संपादकीय

गांव में स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था

हमारे देश में बहुत से गांव तो ऐसे हैं जहां पीने का पानी तो उपलब्ध है, लेकिन वह स्वच्छ नहीं है और चूंकि पेयजल उन मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है जिनके बिना मानव जीवित नहीं रह सकता, उस अस्वच्छ जल का सेवन गांव वाले कर लेते हैं और जिनके परिणाम स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। लोग कई बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। 80 प्रतिशत बीमारियों का सम्बन्ध जल से होता है। कहीं-कहीं तो अज्ञानतावश भी प्रदूषित जल पीने के लिए उपयोग किया जाता है। कुएं अधिकतर खुले होते हैं। नहाने, कपड़े धोने का स्थान भी वहीं होता है जहां से पीने का पानी लिया जाता है। और तो और, पशुओं का नहाना धोना भी वहीं होता है। जिससे गन्दा पानी रिस-रिस कर कुएं में जाता रहता है. ऐसे पानी को पीने से घातक बीमारियां पनपती हैं।

औद्योगिक प्रगति के कारण भी पर्यावरण दूषित होता जा रहा है जिस कारण स्वास्थ्य और शुद्ध पेयजल की समस्या बड़ी विकट बन गई है। इसको रोकने के लिए केन्द्र सरकार ने जल प्रदूषण एक्ट पास कर दिया है और समस्याग्रस्त गांवों को 1985 तक पेयजल उपलब्ध कराने का दृढ़ संकल्प कर लिया है। 1 अप्रैल, 1980 से भारत ने 'अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल एवं स्वच्छता दशाब्द' लागू किया है। आशा है इस दौरान सभी ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की सुविधा उपलब्ध हो जाएगी।

जिन गांवों में पीने के पानी की कमी है वहां पेयजल की व्यवस्था हेतु कई कदम उठाए गए हैं। इस काम को काफी महत्व दिया गया है। देश में 2,30 लाख गांव ऐसे हैं जिन्हें प्राथमिकता के आधार पर पीने का पानी उपलब्ध कराया जाना है। 1972 और 1980 के बीच गांवों को पानी सप्लाई करने के काम पर बड़े पैमाने पर किए गए खर्च के फलस्वरूप पानी की कमी वाले लगभग 95,000 गांवों को पीने के पानी की व्यवस्था की गई। जिन 57,000 गांवों को (सिक्किम के गांव भी शामिल हैं) सर्वेक्षण में पानी की कमी या स्वास्थ्य के लिए हानिकारक पानी वाला बताया गया, उनमें स्वच्छ पेयजल की सप्लाई का इंतजाम अभी किया जाना है।

छठी योजना में ऐसा प्रावधान है कि पानी की कमी वाले जिन गांवों का पता लगाया गया है उनमें पीने के पानी का कम से कम एक ऐसा साधन अवश्य हो जो साल भर बना रहे और स्वास्थ्य समस्या वाले गांवों में कम से कम एक पेयजल साधन अवश्य उपलब्ध कराया जाएगा जिससे सभी ग्रामवासियों को पीने का स्वच्छ जल प्राप्त हो सके। इस कार्यक्रम पर अमल करते समय अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों की आवश्यकताओं को समुचित प्राथमिकता दी जाएगी।

भारत जैसे विशाल देश में साधनों की सीमाओं और समस्या की विकटता को देखते हुए यह स्वाभाविक है कि हम खर्चीली और अनुसन्धान योजनाएं लागू नहीं कर सकते और न ही पूरे देश में एक समान जल व्यवस्था सम्भव है। हमारे देश में विभिन्न प्रकार की जलवायु है। तरह-तरह के जल स्रोत हैं—जैसे बहता पानी, रुका पानी और भूमिगत पानी। इन परिस्थितियों में हमारे लिए किफायती साधन अपनाना न्यायसंगत है जिनमें स्थानीय आवश्यकताओं का ध्यान रखा जा सके, जो सरल हों और सादे हों। नीति यही होगी कि सभी ग्रामवासियों को स्वच्छ पेयजल प्राप्त हो सके। इस कार्यक्रम को विशेष बल प्रदान करने के लिए इसे 20 सूत्री कार्यक्रम का एक अंग बनाया गया है। □

मज़दूर मंज़िल

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : **सम्पादक, कुरुक्षेत्र** (हिन्दी), ग्रामीण विकास मन्त्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

एक प्रति : 1 रु०, वार्षिक चन्दा : 10 रु०

व्यापार व्यवस्थापक : एस० एल० जायसवाल
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : **एल० आर० बत्रा**
सहायक निदेशक (उत्पादन) : **के० आर० कृष्णन**

दूरभाष : 382406

सम्पादक : श्रीमती सुमन शर्मा
उपसम्पादक : राधे लाल
आवरण पृष्ठ : परमार

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास का प्रमुख मासिक

वर्ष 28 **चैत्र-वैशाख 1905** **अंक 6**

इस अंक में **पृष्ठ संख्या**

ग्रामीण क्षेत्रों में जल प्रदूषण की समस्या 2
प्रमोद सिंह
शाश्वत सत्य (कविता) 3
कृष्ण शंकर भटनागर
नए कुशल ग्रामीण प्रबंधकों की आवश्यकता 4
एम० बी० राव
चलो चलें गांव की ओर (कविता) 10
लेखराम चौहान 'हिमाचली'
गलता की घाटी में पेड़ों की हरियाली 11
खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी 12
समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम 15
नए जीवन की ओर निरन्तर अग्रसर--हमारे आदिवासी 16
जगमोहन लाल माथुर
भारतीय अर्थव्यवस्था : 1982 की उपलब्धियां 19
केदार नाथ गुप्त
ट्राइसेम के अधीन ग्रामीण युवकों को परम्परागत हस्तशिल्प में प्रशिक्षण 20
राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में सहकारिता 22
दुर्गाशंकर शुक्ल
ऐसा फिर नहीं होगा (लघु कथा) 25
कुलदीप जैन
नई नीति से कृषि का समग्र विकास 26
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी
गुजरात की ग्रामीण विकास योजना 28
के० एन० शेलट
केन्द्र के समाचार 30
साम गांव की रातों में सूर्य का उजाला (सफलता की कहानी) 32
मध्य प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में पेयजल की व्यवस्था आवरण पृष्ठ-3
एम० के० भारत

ग्रामीण क्षेत्रों में जल प्रदूषण की समस्या

प्रमोद सिंह

वायु के बाद दूसरी महत्वपूर्ण वस्तु जल होती है। शहरों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में भी जल-प्रदूषण की समस्या विकट होती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में पेय-जल की समस्या भी काफी भयावह है। देश के कुल 5,76,000 गांवों में 1,73,000 गांव समस्याग्रस्त हैं, जहां पीने के पानी की कोई व्यवस्था नहीं है। केवल 76,900 गांवों में पीने के पानी की समुचित व्यवस्था है। 3 लाख गांवों में पीने का पानी उपलब्ध तो है लेकिन स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से उचित नहीं है। उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर 2 लाख गांवों में प्रमुखता के आधार पर पीने के पानी की व्यवस्था करनी होगी।

पीने का पानी उपलब्ध कराने की दिशा में तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, गुजरात, पंजाब एवं हरियाणा के प्रयत्न सराहनीय हैं। । इस दिशा में धीमी गति से विकास उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, राजस्थान, कर्नाटक, जम्मू कश्मीर में हो रहा है। उत्तरी पूर्वी राज्यों की स्थिति बड़ी ही दयनीय है। इन राज्यों के पिछड़े इलाकों में तो जिस तरह का जल उपलब्ध हो जाता है, लोग उसका उपयोग कर लेते हैं।

राजस्थान के 33,000 गांवों में से 24,000 अर्थात् 73 प्रतिशत गांवों में पेयजल की समस्या है। बिहार के 67,566 गांवों में से 25,000 अर्थात् 37 प्रतिशत गांव, महाराष्ट्र के 35,778 गांवों में से 14,000 अर्थात् लगभग 39 प्रतिशत गांव तथा उत्तर प्रदेश के 1,12,561 गांवों में से 35,506 अर्थात् 31 प्रतिशत गांव पेयजल के दृष्टिकोण से समस्याग्रस्त हैं। भारत ने भी अन्तर्राष्ट्रीय "पेयजल एवं स्वच्छता दशांक "1 अप्रैल, 1980 से लागू किया है। आशा की जाती है कि इस दशांक के दौरान पूरे ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की सुविधा उपलब्ध हो जाएगी।

गांवों में जल धरातलीय एवं भूमिगत दोनों स्रोतों से प्राप्त किया जाता है। धरातलीय स्रोतों में नदी, झील, तालाब, नहर तथा भूमिगत जल में कुएं एवं नलकूप प्रमुख हैं। गांवों में अज्ञानता के कारण प्रदूषित जल पीने के लिए उपयोग किया जाता है। कुएं अधिकतर खुले होते हैं। उनमें धूल, खरपतवार इत्यादि पड़ते रहते हैं। बरसात के दिनों में गन्दा जल आस-पास के क्षेत्रों से आकर कुओं में चला जाता है, तालाबों का जल मनुष्यों के नहाने-पीने, पशुओं के नहाने-पीने, तथा डिटरजेंट साबुन की टिकियों से कपड़े साफ करने के लिए उपयोग किया जाता है। प्रदूषित जल उपयोग करने के पीछे लोगों में व्याप्त धार्मिक अन्धविश्वास भी है। नदियों के जल में लोग देख रहे हैं कि उसमें गन्दा जल-मलमूत्र बह कर आ रहा है। इसके बावजूद भी लोग उसी जल का उपयोग करते हैं। नदियों का जल मेले त्योहार आदि के समय और भी प्रदूषित हो जाता है और लोग फिर भी उसी जल का उपयोग करते हैं। यह समस्या अशिक्षितों के साथ-साथ शिक्षितों में भी व्याप्त है।

गांवों में लोगों के घरों से निकलने वाला जल आस-पास के क्षेत्रों में ही एकत्र हो जाता है। कभी-कभी तो इन्हीं गन्दी नालियों को लेकर लोगों में आपस में झगड़े भी हो जाते हैं। स्थिर गन्दे जल से मच्छरों की बढ़ोत्तरी के साथ-साथ छूत की बीमारियां भी तेजी से फैलती हैं। देश के केवल 15 प्रतिशत गांवों में ही शौचालयों का उपयोग किया जाता है, शेष 85 प्रतिशत गांवों में खुला स्थान शौच के लिए उपयोग किया जाता है, जो कि बरसात के समय में बहकर तालाबों, नदियों में मिल जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 80 प्रतिशत रोगों का सम्बन्ध जल से होता है। टाइफाइड, हैजा, पेचिश आदि के कीटाणु जल को प्रदूषित करते हैं। भारत में अधिकांश लोग पेट की बीमारियों से पीड़ित होकर मरते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति एक हजार व्यक्ति पर 16.5 व्यक्ति केवल पेचिश से मरते हैं।

उद्योग धन्धों तथा नालियों से डाला गया गंदा जल नदियों, झीलों, तालाबों के साथ-साथ भूमिगत जल को भी प्रदूषित कर देता है। सन् 1981 में सूरत से 7 कि० मी० दूर 10 गांवों के लोग प्रदूषित जल से प्रभावित हो गए। इसका प्रमुख कारण यह था कि मिंधोला नदी में उधवा औद्योगिक क्षेत्र से बड़े पैमाने पर फ्लोराइड युक्त गन्दा जल डाला गया था। मिंधोला नदी की मछलियां मरने लगीं तथा बच्चों, गाय-बैलों, भैंसों में दांत की बीमारी फैलने लगी।

काम्बे शहर के आस-पास क्षेत्रों में भूमिगत जल में सीसा (लेड) की मात्रा अधिकतम निर्धारित सीमा से आठ गुनी है। यही स्थिति बम्बई के आस-पास के क्षेत्रों की है। मई, 1982 में उदयपुर के नंदवेल गांव के चार बच्चे प्रदूषित कुएं के जल पीने के कारण मर गए। इसका प्रमुख कारण यह था कि हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड कारखाना अपना गन्दा जल बग्ची नदी में उड़ेलता था जिससे आस-पास का भूमिगत जल विषैले खनिज पदार्थों के कारण प्रदूषित हो गया था। इतना ही नहीं प्रदूषित

जल पीने के कारण - यहां के लोग तरह-तरह की बीमारियों से पीड़ित हैं ।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि भूमिगत जल प्रदूषण से मुक्त होता है । जब तक कि उसमें ऊपरी क्षेत्र से प्रदूषित जल शोषित नहीं होता है परन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं है जो नीचे की तालिका से स्पष्ट है ।

तालिका 1

कुओं के जल की रसायनिक संरचना (पी०पी०एम० में)

रसायनिक तत्व	मात्रा	अधिकतम निर्धारित सीमा
फ्लोराइड	1.5–16.0	1.0 से कम
लोहा	1.0–10.0	0.3 से कम
नाइट्रेट	100–400	50
घुले हुए नमक	1,000–3,000	100

पी०पी०एम०—दस लाख का एक भाग

भूमिगत जल जो पीने के लिए उपयोग किया जाता है उसमें लोहा तथा मैंगनीज 0.3 तथा 0.1 मिलिग्राम प्रति लीटर तक अधिकतम सीमा निर्धारित की गई है जबकि उत्तर प्रदेश, बिहार, असम, मणिपुर, पश्चिम बंगाल के भूमिगत जल से लोहे की मात्रा 1–10 मिलिग्राम प्रति लीटर तक तथा मैंगनीज 0.2 से 0.5 मिलिग्राम प्रति लीटर तक पाया जाता है ।

भूमिगत जल औद्योगिक गंदे जल, गंदी नालियों के जल के भूमि में सोखने के साथ-साथ रसायनिक खाद, सूक्ष्म जीवाणुओं, कीटाणु नाशक दवाइयों, डी०डी०टी० आदि से प्रदूषित होता है। यह जल उन क्षेत्रों में जल्दी प्रदूषित हो जाता है जहां भूमिगत जल-स्तर काफी ऊपर होता है । आवश्यकता इस बात की है कि उन सभी क्षेत्रों में जहां भूमिगत जल-स्तर ऊंचा है जल का रसायनिक विश्लेषण करके लोगों को उपलब्ध कराया जाए । इंडियन टाक्सीको लाजिकल रिसर्च सेन्टर तथा के०जी० मेडिकल कालेज, लखनऊ ने उन्नाव जिले के कुछ ऊंचे जल-स्तर वाले कुओं के जल परीक्षण के बाद यह सिद्ध किया कि इसमें मैंगनीज की मात्रा अधिक है जिससे आदमी लकवा का शिकार आसानी से हो जाता है । यहां गहरे नलकूप का उपयोग उपादेय होगा ।

गांवों में नहरों के जल का उपयोग भी पीने के पानी के रूप में किया जाता है जिसमें फ्लोरीन, नाइट्रेट तथा नाइट्राइट की मात्रा अधिक होती है। रायबरेली तथा पंजाब की नहरों में फ्लोराइड की मात्रा अधिक है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है ।

भारत में जल प्रदूषण की समस्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है एक तरफ तो पेयजल का संकट है तो दूसरी तरफ उसका प्रदूषण। 1 मई, 1981 में पश्चिम बंगाल के एक गांव नांगलोव में एक मास के दौरान 1300 व्यक्ति हैजा तथा 700 व्यक्ति पेचिश से प्रभावित हुए ।

शाश्वत सत्य

धरती
धरती से फसल
फसल में बाली
बाली में अन्न
अन्न से आटा
आटे से रोटी
और—
रोटी से पेट
पेट से आदमी
और इन सबका
लक्कड़ दादा—
परिश्रम ।
परिश्रम से पसीना
और फिर—
पसीने से धरती
धरती से फसल
यही क्रम
यही शाश्वत सत्य ।

कृष्ण शंकर भटनागर
8/321, कम्बोह कटहरा,
सहारनपुर (उ० प्र०)

अगर जल प्रदूषण को रोकने के लिए प्रयत्न नहीं किए गए तो इस सदी के अन्त तक इसके भयानक परिणाम सामने आ सकते हैं। केन्द्रीय सरकार ने जल प्रदूषण एक्ट पास कर दिया है तथा कई राज्यों ने भी अपने यहां इसके विभाग खोल रखे हैं। इसको रोकने के लिए अधिकाधिक पूंजी की व्यवस्था करनी होगी जो हमारी बोझिल अर्थव्यवस्था को भी प्रभावित करेगी। परन्तु राष्ट्र एवं मानवहित को ध्यान में रखकर इसको लागू करना होगा । सरकारी संस्थाओं के साथ-साथ स्वैच्छिक संस्थाओं, ट्रेड यूनियन, किसान सभा, उपभोक्ता सोसायटी को जल प्रदूषण रोकने के लिए प्रयत्न करना होगा । समाचार पत्र इस दिशा में महत्वपूर्ण सहयोग कर सकते हैं । जहां कहीं भी प्रदूषण की समस्या हो वे प्रमुखता के आधार पर छाप कर लोगों का ध्यान आकृष्ट कर सकते हैं । प्रत्येक जिलों में जल परीक्षण के लिए प्रयोगशालाएं खोली जानी चाहिए जो कि अपनी रिपोर्ट समाचार पत्रों द्वारा लोगों तक पहुंचाएं । अन्त में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जब तक नदियों, झीलों, तालाबों में औद्योगिक गन्दगी, कूड़ा-करकट, मल-मूत्र फेंकना बन्द नहीं होगा तब तक प्रयत्न बेकार साबित होगा । □

सचिव, पर्यावरण विज्ञान अध्ययन केन्द्र
इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद ।

नए कुशल ग्रामीण प्रबन्धकों की आवश्यकता

एम० बी० राव,

पी० आर० एम० सलाहकार, ग्रामीण प्रबन्धक संस्थान,
आनन्द

गुजरात के कैरा जिला के आनन्द नामक स्थान में 1979 में ग्रामीण प्रबन्ध स्थान की स्थापना के साथ ही ग्रामीण प्रबन्धक की दिशा में एक नई प्रणाली का सूत्रपात हुआ । इस संस्थान की स्थापना का उद्देश्य गांवों का सर्वांगीण और निरन्तर विकास और उत्पादकों के संगठनों का सुचारु संचालन है । इस संस्थान में प्रबन्ध प्रशिक्षण तथा शिक्षा के माध्यम से और अनुसंधान तथा सलाहकार गतिविधियों से उपयुक्त प्रबन्ध संसाधन तैयार किए जाते हैं ।

भारत में गांवों की संख्या अधिक है । जहां लगभग 80 प्रतिशत लोग तो गांवों में ही रहते हैं। इस देश की विकास योजना तैयार करने वालों ने कई ऐसे कार्यक्रम, जिनसे समाज के इस बहुसंख्यक समुदाय को लाभ पहुंचे, बनाए हैं । हालांकि अब तक ये लोग इन लाभों से वंचित रहे । कुछ अपवादों को छोड़कर इन कार्यक्रमों में अपने लक्ष्य पूरा करने में सफलता नहीं मिली । हाल ही में, विकास योजना तैयार करने वाले, सरकारी तंत्र और विकास प्रशासकों ने इन कार्यक्रमों का पुन: मूल्यांकन करना शुरू कर दिया है ताकि वे ऐसी नई नीति निर्धारित और कार्यान्वित कर सकें जिससे आशा की जाती है कि अभीष्ट लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकेगा । पुनर्मूल्यांकन करते समय इन कार्यों में लगे कई लोगों ने यह महसूस किया कि ग्रामीण विकास की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए कुछ ऐसे लोगों की जरूरत है जो कि व्यावसायिक प्रबन्धक कार्य में प्रशिक्षित हों । इसी सिलसिले में एक नया शब्द गढ़ा गया और उसे नाम दिया गया "ग्रामीण प्रबन्ध" ।

हमारे देश में प्रबन्ध से संबंधित वर्तमान संस्थान देश की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए उचित संख्या में प्रबन्धक तैयार नहीं कर सकते। दूसरी तरफ, इन संस्थानों में जो लोग प्रशिक्षित होते हैं उनमें से अधिकांश लोग निजी क्षेत्र की तरफ भागते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में सेवा की बेहतर सुविधाएं हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम और सरकारी दफ्तरों में ऐसे प्रशिक्षित लोग बहुत ही कम संख्या में आते हैं । ऐसे लोग जिन्हें प्राइवेट उद्यमों में नौकरी नहीं मिल पाती वे ही सार्वजनिक संस्थानों में आते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां तक गांव के उद्यमों व ग्राम्य क्षेत्रों का सवाल है, उक्त प्रकार के लोगों का योगदान नगण्य-सा है ।

देश की विकास योजना तैयार करने वाले लोगों में से कुछ लोग यह बहुत गंभीरता से महसूस करते हैं कि अब ग्राम प्रबन्धकों के एक ऐसे समुदाय की जरूरत है जोकि भारत के प्रमुख क्षेत्र के हितों का ध्यान रखकर उसकी सेवा कर सके । जब हम ग्रामीण प्रबन्ध की बात करते हैं तो हमारे सामने यह बात साफ आ जाती है कि यह प्रबन्ध शहरी प्रबन्ध या औद्योगिक प्रबन्ध से बिल्कुल भिन्न है ।

इन ग्रामीण प्रबन्धकों के विशेष गुणों पर विस्तार से चर्चा करने से पहले, यह बेहतर होगा कि हम सामान्य तौर पर भारत के ग्रामीण क्षेत्र और विशेष रूप से उसकी कृषि क्रियाओं पर एक नजर डालें और देश की ग्राम विकास नीतियां इसके विकास कार्यक्रम, उनके कार्यान्वयन मूल्यांकन पर गौर करें ।

भारतीय ग्रामीण क्षेत्र

गांधी जी के स्वप्नों का एक आदर्श भारतीय गांव ऐसा होना चाहिए जिसमें पूर्ण स्वच्छता हो, इसके आवासों में, चाहे वे झोंपड़ियां हों या पक्के मकान, प्रकाश और हवा का संचार होता रहे, उनके मकान गांवों में ही उपलब्ध मसाले व सामान से बने हों, उसकी गलियों में कोई गंदगी न हो। उनकी आवश्यकता के अनुसार पास में ही कुएं हों, सभी के लिए उपासना के स्थान हों, सामुदायिक बैठकों के लिए स्थान हो, चराई के लिए साँझा चरागाह हो, सहकारी डेयरी हो, प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय हों जिनमें कि औद्योगिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा और उनकी पंचायतें हों जोकि आपसी झगड़ों का फैसला करें । इस प्रकार के आदर्श गांव में अपनी जल व्यवस्था होगी जिससे कि सबको साफ पानी मिलेगा और ग्रामीण रक्षकों की अनिवार्य सेवा होगी । हरिजन के 9 जनवरी, 1937 के अंक में श्री रजनी कोठारी के लेख में गांधी जी के इन विचारों का उल्लेख किया गया है ।

यद्यपि गांधी जी ने लगभग चार दशक पहले ही आदर्श गांव के बारे में अपने विचार व्यक्त किए थे और हमारी विकास योजनाओं का उद्देश्य भी गांधी जी के विचारों को मूर्तरूप देना था पर खेद है, कि अभी तक हम उस लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाए । अब तो हालत ऐसी बुरी है कि बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी और असुरक्षा की वजह से लोग बेतहाशा परेशान हैं। जरूरत तो अब इस बात की है कि गांव के लोगों को गरीबी की रेखा से उबारा जाए और उनकी आमदनी बढ़ाने के उपाय अपनाए जाएं ।

हमारे देश की आरंभिक तीन पंचवर्षीय योजनाओं में, योजना बनाने वालों के दिमाग में कुछ घरेलू उत्पादन की बात ही प्रमुख थी। इस बात से भारत की आम जनता की समस्याओं का तो हल होने से रहा। बाद की योजनाओं में उनका ध्यान रोजगार के अधिक से अधिक अवसर जुटाने पर गया। लेकिन इससे भी इच्छित परिणाम नहीं मिले। असफलताओं के निम्नलिखित कुछ प्रमुख कारण हो सकते हैं :—

1. समाजों में परम्परागत गैर कृषि धन्धों व शिल्पों का विनाश।

2. आधुनिकीकरण" के वे पैकज कार्यक्रम जोकि विश्व के उन महानगरों से आए थे जहां के बड़े लोग इस आधुनिकीकरण के दास बन गए थे। इसका परिणाम यह हुआ कि इन चीजों को प्राथमिकता दी जाने लगी : तीव्र उद्योगीकरण, विकासशील शहरीकरण, "सामाजिक परिवर्तन" और शैक्षणिक विकास प्रक्रिया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि एक नए शहरी मध्यवर्गीय समुदाय का विकास होने लगा जिनके उभरने का कारण यह है कि ये लोग अपने समाज के भीतर औपनिवेशिक और औपनिवेशिकोत्तर नौकरशाही केन्द्रों के निकट थे।

3. एक ऐसे विकास तंत्र का होना जिसमें यह माना गया कि बेरोजगारी आर्थिक विकासहीनता का एक लक्षण मात्र है और जैसे-जैसे आर्थिक विकास होगा इससे बेरोजगारी समाप्त की जा सकेगी और इसीलिए बेरोजगारी बढ़ती रही। इस प्रकार की व्यवस्था में ऐसे क्षेत्र में निवेश पर ध्यान केन्द्रित किया गया जहां विकास की तुलना में रोजगार पिछड़ गया और यह भी उन ग्रामीण क्षेत्रों में जहां कि अधिकांश लोग रहते हैं और जिन्हें अपनी आजीविका कमाने के लिए काम मिलना ही चाहिए था।

4. आर्थिक योजनाओं में संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया क्योंकि कुल राष्ट्रीय आय बढ़ाने पर जोर दिया गया, सामाजिक राजनीतिक दृष्टिकोण पर उतना जोर नहीं दिया गया जबकि सामाजिक राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाने का उद्देश्य विशेष वर्गों और क्षेत्रों का विकास और विषमताओं को कम करना होता है।

5. दूसरी संबंधित नीतियां उदाहरण के लिए शिक्षा का प्रसार जिससे कि ग्रामीण क्षेत्रों से दक्षताप्राप्त लोग निकल कर बाहर जाने लगे, शहरी इलाकों में शिक्षा और रोजगार के अवसरों के बीच भारी अन्तर आ जाना और ऐसी स्थिति का पैदा होना जबकि गांवों में विकास संबंधी जगहें तो खाली पड़ी रहती हैं पर शहरों में विशेष रूप से पढ़े-लिखे नौजवानों में बेरोजगारी बढ़ती रहती है।

इन सबके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्र आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से गतिहीन हो गया।

भारतवासियों के लिए कृषि परम्परागत आर्थिक धंधा रहा है। आज भी यहां के 70 प्रतिशत लोग अपनी आजीविका के लिए खेती-बाड़ी पर निर्भर हैं। इतने बहुसंख्यक लोगों के खेती बाड़ी पर आश्रित रहने के कारण, भारत सरकार ने कृषि क्रियाओं में अपनाए जाने वाले तौर-तरीकों में, फसलों की उत्पादकता में, खेती के अन्तर्गत भूमि में और कृषि-उत्पादों की बिक्री में सुधार लाने के लिए अनेक प्रयत्न किए हैं। इन सुनियोजित प्रयत्नों के बावजूद, भारतीय किसान के पास अब भी पर्याप्त साधन नहीं हैं। जो थोड़े बहुत साधन हैं उनका भी वह कारगर ढंग से इस्तेमाल नहीं कर सकता और मंडी की सुविधाएं भी अच्छी नहीं हैं, आदि अनेक बातें हैं जिनके कारण भारतीय किसान त्रस्त है। कई कार्यक्रम अपनाए गए, नए तौर तरीके भी चालू किए गए और अतीत में ग्राम विकास के लिए और गांवों के आधुनिकीकरण के लिए प्रयोगात्मक अग्रिम प्रायोजनाएं भी चालू की गईं। इन में कुछ प्रमुख प्रायोजनाएं ये हैं : मार्टेनडम प्रायोजना (1921); बड़ौदा में ग्रामीण पुनर्निर्माण प्रायोजना (1932); मद्रास में फिरका विकास कार्यक्रम (1946); उत्तर प्रदेश में इटावा अग्रिम प्रायोजना (1948); सामुदायिक विकास योजना (1952); सघन कृषि विकास कार्यक्रम (1960–61); इसके अतिरिक्त और कई योजनाएं भी हैं।

कृषि तथा सिंचाई मंत्रालय की गतिविधियों को एक नई दिशा दी गई है ताकि कृषि का जल्दी ही विकास किया जा सके। और कृषक समुदाय में कमजोर वर्ग की दशा को सुधारा जा सके। हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि को उच्च प्राथमिकता दी गई। इन सबके अलावा कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए अनेक संरचना आधार सुविधाओं में काफी पूंजी लगाई गई है।

हाल के वर्षों में कार्यक्रमों के मूल्यांकन को बहुत महत्व दिया जा रहा है। "रीडिंग्ज आफ इवैल्यूयेशन रिसर्च, रसल सेज फाउन्डेशन, 1971" में बतलाया गया है कि "सामाजिक परिवर्तन आने में और ग्राम समुदाय के सदस्यों के जीवन और वातावरण को सुधारने में वर्तमान और नए कार्यक्रमों का समुचित मूल्यांकन बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।" कृषि के विकास में नया रवैया और अनेक नए कार्यकलाप शामिल हैं। इसका मतलब है कि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप इस नए उत्तरदायित्वों को समझें। अतीत से हमें तुरन्त ही मार्गदर्शन नहीं मिल सकता क्योंकि हमें उनका पूरा लेखा-जोखा स्पष्ट रूप से सुलभ नहीं है। बिना कारगर मूल्यांकन के किसी भी प्रशासनिक एजेन्सी के लिए यह संभव नहीं है कि वह योजना तैयार करने, गठन व नियंत्रण और अपने प्रशासनिक तंत्र को दिशानिर्देश करने के प्रबन्धात्मक कार्यों को भलीभांति निभा सके। मूल्यांकन को कार्यक्रम की योजना तैयार करने की दिशा में एक कदम समझा जाना चाहिए।

इस प्रकार इस समय कृषि-कार्यक्रमों का मूल्यांकन बहुत महत्वपूर्ण है और इस मूल्यांकन में हमें यह पता लगाना है कि जिन परिणामों की आशा की जाती थी वे प्राप्त हुए या नहीं। इन कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने से पहले, हमें इस बात की भी जांच करनी चाहिए कि ये कार्यक्रम किन उद्देश्यों से प्रेरित हुए। इन सब कार्यक्रमों के पीछे बुनियादी दर्शन यह है कि

लोग विकास की इस प्रक्रिया में भाग लें। लोगों का कार्यक्रमों में भाग लेना भी कई बातों पर निर्भर है : (1) यदि कृषि विकास कार्यक्रमों में लोग भाग लेते हैं तो जरूरी बात है कि खेती की उपज बढ़ेगी और (2) स्थानीय ग्राम संस्थाएं (पंचायतें आदि) लोगों में ऐसी क्षमता पैदा करेंगी ताकि वे आर्थिक व सामाजिक निर्णय स्वयं ले सकें।

परन्तु वास्तव में देखा यह गया है कि हर जगह अधिकांश किसान उन लोगों से अधिक प्रभावित होते हैं जिनके बीच वे रहते हैं, उच्च व्यावसायिक कृषि प्रणाली तक में किसानों पर वहां की स्थानीय परम्पराओं और मूल्यों का प्रभाव पड़ता है। कृषि संस्कृति के बीच रची-बसी परम्पराओं से खेती को विलग नहीं किया जा सकता। इसलिए ऐसे कार्यक्रम जिनका उद्देश्य ग्राम संस्कृति में परिवर्तन लाना है, कृषि के विकास में योगदान कर सकते हैं।

ग्राम विकास का लेखा-जोखा

विकास से संबंधित प्रशासकों ने इस बात को स्वीकार किया कि किसी भी विकासशील अर्थव्यवस्था में यह आवश्यक है कि जीवन को समग्र रूप से देखा जाए, यानी केवल इक्का-दुक्का पहलू न लिया जाए यानी केवल लागत व लाभ को ही सामने न रखा जाए बल्कि ग्राम्य जीवन के आधुनिकीकरण, लोक-तंत्रीकरण व राजनीतिकीकरण पर भी ध्यान दिया जाए। अधिकांश ग्राम विकास कार्यक्रम या संगठन उक्त उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णतः सफल नहीं हुए। इन असफलताओं के कुछ कारण निम्नलिखित हैं :—

(क) कृषि के ढांचे में बहुत विषमता थी और जमीदारों और किसानों तथा खेतिहर मजदूरों के हितों में बहुत टकराव था। गांव एक समुदाय नहीं था। (ख) प्रत्येक गांव में कुछ निहित स्वार्थ के लोग थे और वे गांव को मिलने वाले लाभ को खुद ही हड़प जाते थे। (ग) ग्रामीण संगठन/संस्थाएं ऐसे तंत्र मात्र बन गए जो कि केन्द्रीय सहायता के लिए मांग करते और रियायतें लेते। लेकिन इन रियायतों का फायदा उन लोगों को मिलता था जो इनकी मांग करते थे न कि उनको जिन्हें इनकी जरूरत थी। और (घ) कार्यक्रम तैयार करने वाले और उन्हें क्रियान्वित करने वालों के बीच एक भारी खाई थी।

इस प्रकार गलत धारणाओं और संचार की कमियों के कारण, इक्की-दुक्की सफलताओं को छोड़कर, अधिकांश विकास गतिविधियों में असफलता ही मिली। अब यह अनुभव किया जा रहा है और निस्संदेह सिद्ध भी हो चुका है कि किसी भी ग्राम विकास प्रायोजना की सफलता के लिए यह अनिवार्य है कि लोग उस प्रायोजना में भाग लें। लेकिन तभी तो भाग लेंगे जब वे जान जाएंगे कि उन्हें इससे फायदा मिलने वाला है अन्यथा ग्राम संगठनों का उनके लिए कोई मतलब ही नहीं है। इस निष्कर्ष से विकास की दिशा में कुछ नई नीतियां तैयार की गईं और ऐसी प्रशासनिक मशीनरी तैयार करने की बात सोची जाने लगी जोकि प्रायोजनाओं के प्रबन्ध व कार्यान्वयन में विशेष रूप से प्रशिक्षित हो। इन नई नीतियों पर चर्चा करने से पहले भारतीय कृषि के कुछ तथ्यों की जांच की जानी चाहिए। ये तथ्य हैं :

(i) हमारे देश में उत्पादन के साधन बहुत हैं, बहुत जमीन है जिसका पूरा लाभ नहीं उठाया गया।
(ii) भारत में औसत जोत का क्षेत्र कम है।
(iii) मुख्यतः लोग परम्परागत खेती से गुजारा चलाते हैं।
(iv) खेती योग्य भूमि की मिल्कियत बहुत विषम है।
(v) अधिकांश खेतों में मजदूरों की जरूरत पड़ती है।
(vi) उर्वरकों जैसे निवेशों पर बहुत कम खर्च किया जाता है।
(vii) छोटे किसान मुश्किल से गुजारा कर पाते हैं और उस हालत में वे जोखिम मोल लेने की स्थिति में नहीं हैं।
(viii) भारत के ग्रामीण उत्पादक लोग अलग-अलग भौगोलिक और जलवायु परिस्थितियों में रहते हैं। इन लोगों की सामाजिक सांस्कृतिक प्रवृत्तियां भी अलग-अलग हैं। ऐसी हालत कई दशकों तक चलेगी।
(ix) गुजारे लायक खेती में किसान यही कोशिश करता है कि वह उस क्षेत्र की खास खाद्यान्न की फसल ले।
(x) ऐसे कोई विकसित उद्योग भी नहीं हैं जिनसे वहीं के कृषि उत्पादों के उपयोग से अधिकतम लाभ उठाया जा सके।
(xi) गांवों के उत्पादक अलग-अलग काम नहीं कर सकते। उन्हें अपने साधनों या निवेशों और बिक्री के लिए राष्ट्रीय मंडी से जुड़ा रहना पड़ता है।
(xii) किसान की क्रय शक्ति बहुत ही कमजोर है।
(xiii) मौसम की अस्थिरता और अन्य कारणों से उन्हें ऐसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जिनसे माल के लाने, ले जाने, भंडारण, संसाधन, वितरण और विपणन में अनेक कठिनाइयां पेश होती हैं।
(xiv) ग्रामीण उत्पादक के लिए न तो कृषि में प्रतियोगिता है और न अन्तर्राष्ट्रीय मंडी में कृषि पर आधारित उद्योगों के लिए अच्छे सम्पर्क साधन हैं। (जैसा कि अनाजों, कपास, दूध, जूट, चीनी, तिलहन और मछली पर आधारित उद्योग होने चाहिए थे।)

यह दशा है भारतीय कृषि की।

फिर जरूरत किस बात की है ?

स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि "भूखे लोगों को धर्म की शिक्षा देना उनका अपमान करना है। भूखे व्यक्ति को आध्यात्म की शिक्षा देना उसका अपमान है।" हां, हमें ऐसी योजना की आवश्यकता है जो कि ऐसी अर्थव्यवस्था दे सके जिससे हमारे शहरों की सड़कों पर पड़े भूखे की आवश्यकता पूरी की जा सके और भूखे पेट मेहनत करने वाले किसान की आवश्यकता पूरी की जा सके और जिससे गांवों से शहरों की ओर निरन्तर भागने वाले लोगों का तांता टूट सके। (परिशिष्ट क) ऐसा मालूम होता है कि हमारी योजनाएं कुछ ऐसी हैं जिन से गांव के लोग डर कर शहरों की ओर भागने लगते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि गांवों की आर्थिक गतिविधियों में एक ऐसी प्रणाली विकसित की जाए ताकि यह संभव हो कि वहां के निवासी उन गतिविधियों के कार्यान्वयन और प्रबन्ध में भाग ले सकें। क्या यह कोरा आदर्श है? नहीं, ऐसी गतिविधियां सर्वथा नई नहीं हैं। आज भी कई ऐसे पदार्थ हैं जिनका हम रोजाना इस्तेमाल भी करते हैं। जिन्हें ऐसे संगठन तैयार करते हैं जो कि पूरी तरह उत्पादकों के अपने हैं। इन संगठनों का अर्थ व्यवस्था के कुशल संचालन और दायित्वपूर्ण कार्य में महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसी व्यवस्था में उत्पादक और उपभोक्ता दोनों ही पूरी तरह एक दूसरे को सौंपे गए अनुशासन को निभाते हैं।

इस प्रकार के बड़े-बड़े संगठनों के नियोजन, विकास तथा संचालन में अनेक बातों का योगदान है। आधुनिक प्रौद्योगिकी गुणवत्ता नियंत्रण (क्वालिटी कन्ट्रोल) और कुशल प्रबन्ध ऐसी चीजें हैं जिनकी वजह से उनकी बाजार में साख जम गई है। इन संगठनों में नियंत्रण योग्य नीति के अन्तर्गत पर्याप्त नियोजन तथा बाजार के माहौल की आवश्यकता होती है। इस प्रणाली में बीच के काम का कार्यभार पूरी तरह न तो निजी और न सार्वजनिक व्यापार को और न सरकारी नीतियों के भरोसे ही छोड़ा जाता है। उत्पादक और उपभोक्ता दोनों के ही लिए मजबूत और सुनिश्चित विकल्प उन पर नियंत्रण रखते हैं। परन्तु इतना विशाल देश है, यहां की भौगौलिक, राजनीतिक सांस्कृतिक तथा जलवायुवीय दशा इतनी अलग-अलग है कि कहीं भी कोई एक सी प्रणाली काम नहीं कर सकती इन हालातों में लोगों को इस तरह प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है जो कि परिस्थितियों के अनुरूप ढल कर काम कर सकेंगे।

अब तक विभिन्न क्षेत्रों में अनुसधानकर्त्ताओं ने ग्रामीण भारत की कपोल कल्पनाओं और अंध विश्वासों की ओर ध्यान खींचने का प्रयत्न किया है। लेकिन ऐसे लोग तो बहुत ही कम हैं जिन्होंने गांव के लोगों के बीच रहने के कठिन कार्य का अनुभव किया और यह जाना कि उनकी आवश्यकताओं, उनके साधन और योजनाओं के परिणाम क्या हैं। समाज विज्ञान के अनुसंधानकर्त्ताओं ने भी केवल शब्दाडम्बर तक ही अपने को सीमित रखा, लेकिन इन विषयों पर कोई गंभीर और उपयोगी चिन्तन नहीं किया। विश्वविद्यालयों में जो गांव के बारे में शिक्षा दी जाती है वह केवल परीक्षाएं पास करने के उद्देश्य से दी जाती है ताकि विद्यार्थी उपाधि ले सकें और साथ ही गांवों का ऐसा चित्र पेश किया जाता है कि विद्यार्थी वहां के जीवन से डरने लगते हैं। वहां के बारे में गंभीर चिन्तन नहीं किया जाता और न उनके हृदयों में वहां के प्रति सच्ची निष्ठा ही जाग पाती है। कुछ गंभीर अर्थशास्त्रियों ने अनुसंधान किया है पर उसकी शिक्षा का क्षेत्र शहर रहा और इसलिए वे कोई कारगर हल नहीं सुझा सकें और उनके साथ पत्र केवल विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। इसके अतिरिक्त, इन लोगों में से अधिकांश लोगों में उस समय प्रबन्धात्मक चिन्तन की कमी होती है जब कि वह मानव व्यवहार, अर्थशास्त्र तथा समाजविज्ञान आदि का अध्ययन करते हैं। जिन लोगों में इस प्रकार की प्रबन्धात्मक प्रवृत्ति होती है वे इन क्षेत्रों में जाते ही नहीं। लेकिन ऐसे लोग जब इन क्षेत्रों में जाते हैं तो वे सफलतापूर्वक अपने काम को अनजाम देकर बहुत से लोगों को लाभ पहुंचाते हैं। एक ऐसा उदाहरण उन निष्ठावान थोड़े से लोगों का है जोकि लोकप्रिय आनन्द पैटर्न के विकास के पीछे रहे हैं। और जिसकी सफलता से प्रभावित होकर देश भर में आपरेशन फ्लड के नाम से काम किया जा रहा है।

हमारा विशाल देश है, जिसमें विषमता है, भिन्नभिन्न-भाषाएं हैं, अलग-अलग धर्म, जातियां तथा व्यवसाय हैं। विभिन्न लोगों के आर्थिक स्तर में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक ही जाति में और जाति से बाहर लोगों के रीति-रिवाजों में भारी अन्तर है। सदियों से ये विषमताएं हमारे जीवन का अंग रही हैं। और हम इस संस्कृति को बदलने का प्रयत्न कर रहे हैं और वर्तमान प्रणाली की कमजोरियों के बारे में लोगों को बतलाकर उसकी विविधता को कम कर रहे हैं। इन सब प्रयत्नों के बावजूद परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी रही है। और हाल के वर्षों में लोगों ने इस रवैये के बारे में संशय व्यक्त करने शुरू कर दिए हैं। एक प्रणाली को छोड़ दूसरी प्रणाली को अपनाने की प्रक्रिया ऐसी है कि उसमें कुछ रुकावटें आती हैं। इसलिए इस परिवर्तन की प्रक्रिया में हम जो भी प्रणाली अपनाते हैं। वह इतनी सशक्त होनी चाहिए कि वह रुकावट को दबा सके। दूध की सहकारी समितियों की पहले पहल तो बहुत आलोचना की गई लेकिन अनुभव बताता है कि आर्थिक विकास से सांस्कृतिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों ऐसी गुंथी हुई हैं कि अगर एक क्षेत्र में परिवर्तन होता है तो दूसरे में भी परिवर्तन संभाव्य है। इस प्रकार तथाकथित सामाजिक उद्देश्यों से लोगों की संस्कृति बदलने के बजाय, अगर हम लोगों के आर्थिक जीवन में परिवर्तन ला सकें तो इसका प्रभाव स्वयं ही सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों पर पड़ेगा।

अपने आर्थिक उद्देश्यों में सफल होने के लिए हमें व्यावसायिक प्रबन्धात्मक चिन्तन की जरूरत है। हमारे नीति निर्धारकों ने भी यह अनुभव किया है कि हमारा ग्रामीण क्षेत्र जो कि कुल राष्ट्रीय आय की आधी आय का स्रोत है और जिससे अभी और उचित आमदनी होने की संभावनाएं मौजूद हैं, ऐसे लोगों के हाथों में होनी चाहिए जिनके पास जानकारी हो, दक्षता हो, कार्य विशेष के प्रति प्रवृत्ति हो, जो किसानों को संगठित कर सकें, प्रबन्ध कर सकें और विकास कार्य कर सकें ताकि राष्ट्र विकास के पथ पर आगे बढ़ सके।

इसलिए हमें तत्काल ऐसे आदमियों की तलाश करनी चाहिए जिनमें योग्यता हो, प्रवृत्ति हो और उन्हें व्यावसायिक प्रबन्ध कला में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए और उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में जैसे अर्थ शास्त्र, वित्तीय प्रबन्धक, विपणन, व्यवहार, कुशलता, सांख्यिकी, व्यावहारिक अनुसंधान आदि में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये।

ग्रामीण प्रबन्धकों की आवश्यकता

हमारे देश में दर्जनों विश्वविद्यालयों, तीन भारतीय प्रबन्ध संस्थानों में प्रबन्ध शिक्षा दी जाती है । भारतीय प्रबन्ध संस्थानों में ही प्रति वर्ष 600 प्रबन्ध स्नातक निकलते हैं। तब क्या आवश्यकता है कि हम और प्रबन्ध स्नातक तैयार करें ? ग्राम प्रबन्ध का एक विद्यार्थी लिखता है : 'भारत में पहले से ही अनेक उच्च कोटि के उन्नत प्रबन्ध संस्थान मौजूद हैं जिनसे उच्च योग्यता प्राप्त स्नातकोत्तर युवक निकलते हैं परन्तु उनकी संख्या काफी नहीं है, और ऐसे तो बहुत ही कम युवक हैं जो ग्राम सहकारिताओं के लिए काम करना पसन्द करते हैं । समस्या कुछ इस तरह है कि कई प्रबन्ध स्नातक अपने आरंभिक वेतन को अपने स्तर का प्रतीक समझ बैठते हैं या सफलता का मानदण्ड समझते हैं। वे आमतौर पर शहरों मे आते हैं और शहरों में ही काम करते हैं । उनमें शब्दाडम्बर के प्रति रुझान पाया जाता है, जिस प्रवृत्ति से कभी अमरीकी बिजनेस स्कूलों को भी नुकसान पहुंचा है, समस्याओं के समाधान के प्रति अवास्तविक हल सुझाते हैं, किसी व्यापार की व्यावहारिकता क्रियात्मकता को सीखने की प्रवृत्ति उनमें नहीं होती और काम से अधिक बात या विश्लेषण को तरजीह देते हैं।' इस व्यक्तव्य मे ग्राम प्रबन्धकों की आवश्यकता की सही तस्वीर सामने आती है।

देश के मेधावी चुनींदा छात्रों को प्रबन्ध शिक्षा दी जाती है और ये लोग प्रशिक्षित होकर निजी उद्योगों की मोटी-मोटी तनख्वाहों के लालच में फंस जाते हैं । हालांकि भारत सरकार इन संस्थाओं को चलाने में मोटी-मोटी रकमें खर्च करती हैं, पर खेद है, कि इन संस्थाओं में उन विद्यार्थियों में यह भावना नहीं पैदा की जाती कि उनका कार्यक्षेत्र गांव है जहां कि उनकी बहुत आवश्यकता है । दरअसल, जिन संस्थानों में ये लोग पढ़ते हैं वहां का वातावरण कुछ ऐसा होता है कि ये लोग अपने को ग्रामीण गरीब लोगों की सेवा के अनुरूप नहीं बना पाते और तब उनमें और ग्रामीणों के बीच में भारी खाई बन जाती है । यहां डी०पी० कुरियन, अध्यक्ष, आई० आर० एम० ए० बोर्ड आफ गवर्नर्स, जोकि भारतीय सहकारिता के क्षेत्र से सफल प्रबन्धक रहे हैं, के विचार उद्धृत किए जाते हैं। वर्तमान प्रबन्ध संस्थानों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा "सबसे पहले मैं यह बताना चाहूंगा कि इन प्रबन्ध संस्थानों का काम ऐसे प्रबन्धक तैयार करना है जो बड़े-बड़े उद्यमों जैसे बिड़ला और टाटा के लिए उपयुक्त हैं। बिड़ला और टाटा को इन प्रबन्धकों की क्या जरूरत है, वे खुद ही अपने लिए प्रबन्धक तैयार कर सकते हैं । हमें भारी भरसक रकमें सार्वजनिक हितों के लिए खर्च करनी चाहिए । मुझे खेद होता है यह देखकर कि इन संस्थानों से निकलने वाले युवकों को समाजवादी विचारधारा छू तक नहीं गई है । मेरी राय म ऐसी विचारधारा उस राष्ट्र के लिए आवश्यक है जहां कि संसाधन सीमित हों।

दूसरा आलोचना का विषय है कि इन लोगों का लक्ष्य क्या होता है? मैं समझता हूं कि ये लोग इस तरह तैयार किए जाते हैं कि वे यह समझते हैं कि उन्हें वहीं जाना चाहिए जहां उनके हुनर की उन्हें भरपूर कीमत मिल सकती है, न कि उस जगह जहां उनके हुनर की आवश्यकता है । मैं चाहता हूं कि हमारे युवक और युवतियां अपनी कार्यकुशलता का परिचय उन जगहों पर दें जहां वे लोगों की अधिक से अधिक भलाई कर सकें, बजाय इसके कि वे मोटी तनख्वाहों के पीछे दीवाने बनें ।

तीसरा आलोचना का विषय है कि भारत में सबसे बड़ा और अधिक महत्वपूर्ण व्यापार है कृषि पर आधारित व्यापार जिससे कि हमें कुल राष्ट्रीय आय का 45 प्रतिशत भाग मिलता है और हमारी जनता के 73 प्रतिशत लोगों को रोजगार उससे ही मिलता है । मैं चाहता हूं कि हमारे युवक युवतियां इन जगहों में काम करें । समस्या तो यह है कि इन लोगों को इस तरह के व्यापार का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता बल्कि औद्योगिक धंधों का प्रशिक्षण मिलता है।

"..... हमें जरूरत है कृषि पर आधारित व्यापार के लिए, प्रबन्धकों की, हमें ऐसे प्रबन्धक चाहियें जोकि किसानों के सेवक बन सकें ....."

इस तरह हम देखते हैं कि प्रबन्ध शिक्षा के वर्तमान संस्थान ग्रामीण उत्पादन सहकारी संगठनों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकते । हमें अब बिल्कुल भिन्न प्रकार के नए प्रबन्धकों की आवश्यकता है जिन्हें कि व्यावसायिक प्रबन्ध में प्रशिक्षण मिला हो और जिनमें किसानों के लिए काम करने की प्रवृत्ति हो ।

ग्रामीण प्रबन्ध : नया विषय

पिछली बातों की समीक्षा के बाद और भविष्य की अपरिहार्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विकास से संबंधित "ग्रामीण प्रबन्ध" की नई धारणा का आविर्भाव हुआ है जिसका उद्देश्य ग्रामीण उत्पादक संगठनों, बैंक, गांवों में प्रायोजना अधिकारियों की आवश्यकता को पूरा करना है।

ग्रामीण प्रबन्ध का ध्यान उत्पादकों के संगठनों को संगठित करने व उनके प्रबन्ध करने पर केन्द्रित किया जाता है ताकि वे आर्थिक व सामाजिक प्रगति के पूर्वनिर्धारित कार्यक्रमों को प्रेरित कर सकें । इसके अन्तर्गत नई ग्रामीण एजेन्सियों का गठन, उन संगठनों में विकास गतिविधियों का नियोजन, कार्यान्वयन तथा नियंत्रण शामिल है । इसका उद्देश्य यह है कि गांव के लोग अपनी ही कोशिशों से गांवों में नया सुन्दर वातावरण तैयार करें और लोगों का जीवन-स्तर सुधारें । गांव का विकास त्रि आयामीय होना चाहिए यानी लोगों की आमदनी बढ़े, राजनीतिक जागरूकता पैदा हो और रहन-सहन के वातावरण को बेहतर बनाया जाए । इन संगठनों का उद्देश्य लोगों में अधिक परिश्रम की भावना, आत्मविश्वास, अधिक सहयोग और अपने को सुधारने की दिशा में निश्चित प्रवृत्ति को जगाना है । इन उद्देश्यों की पूर्ति तभी हो सकती है जबकि लोगों को ठीक समय पर पर्याप्त निवेश मिल जाए जो कि समन्वित प्रयत्नों से संभव है, खेतों के स्तर पर सेवाएं सुलभ हों, विकास की प्रक्रिया में गांव के लोगों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाए ।

तीसरे विश्व के देशों में आमतौर पर और भारत में विशेष रूप से ग्रामीण प्रबन्ध को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। इसे अपनी उपयोगिता और अनिवार्यता को सरकार और लोगों के सामने सिद्ध करना है। इसे पूंजीवाद के चंगुल से समाज को छुड़ाना है और लोकतांत्रिक समाजवाद की ओर ले जाना है। इसे जीवन के सभी क्षेत्रों में आर्थिक परिवर्तन लाने हैं और सांस्कृतिक परिवर्तन करना है।

हाल के वर्षों में अनेक उच्च अधिकारियों ने और अधिकारी वर्ग ने यह महसूस किया कि सहकारी समितियों की साख मजबूत होती जा रही है। इनका विस्तार भी हो रहा है। उच्चतम प्रबन्ध के स्तर पर प्रबन्ध में दक्ष कार्मिकों की कमी के कारण इनमें कार्यकुशलता का अभाव है। भारी विस्तार के कारण अनेक नई समस्याएं पैदा हो गई हैं जैसे प्रबन्ध, सूचना प्रणाली, उत्पादन नियोजन, आपरेशन प्रबन्ध, अनुसंधान, गुणवत्ता नियंत्रण, वित्तीय प्रबन्ध और मानव संसाधनों का प्रबन्ध कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं जो समस्याग्रस्त हैं। दक्ष प्रबन्ध कार्मिकों के अभाव में वे संगठन उतने कारगर व कामयाब नहीं हो पा रहे हैं। यद्यपि औद्योगिक संस्थानों और गांवों में प्रबन्ध की कुछ समस्याएं एक जैसी हैं पर समस्याओं की प्रवृत्ति और उन समस्याओं को सुलझाने का लोगों का व्यवहार भिन्न-भिन्न है। उत्पादक सहकारी समितियों के सामने व्यापारिक उद्देश्य नहीं है इसलिए गांव के उत्पादकों के दिमाग में व्यापारिक प्रवृत्ति जगाई जानी चाहिए।

इस प्रकार ग्रामीण प्रबन्ध विशेष रूप से हमारे देश के संदर्भ में और सामान्य रूप से तीसरे विश्व के संदर्भ में, देश की आवश्यकताओं के फलस्वरूप पैदा होने वाली एक नई धारणा है। अभी हमें यह देखना है कि हम युवा बुद्धिमान छात्रों को कैसे यह सिखा सकते हैं कि उन्हें राष्ट्र के लिए काम करना है।

ग्रामीण प्रबन्ध क्या कर सकता है ?

ग्रामीण प्रबन्धक एक बिल्कुल नया पद है। पर उसके सामने एक भीषण चुनौती है। उसके रास्ते में कांटे हैं। उसके लम्बे सफर में उसके साथी होंगे—राजनेताओं की चालबाजियां राज्य सरकारों के भ्रष्ट कारनामें, अधिकारियों की बेकार योजनाएं स्थानीय नेताओं के निहित स्वार्थ, औरतों और लोगों के खुद के मतभेद। उसे कई मोर्चों पर लड़ना है। उसके सामने कोई पिछली मिसालें भी नहीं हैं। उसे व्यापारियों, अधिकारियों, बिचौलियों, निहित स्वार्थी का सामना करना पड़ेगा।

ऊपर बताई गई बाधाओं से ग्रामीण प्रबन्धक विचलित न हों। उसे तो भीषण चुनौतियों के सामने अपना रास्ता बनाना है। ग्रामीण प्रबन्धक किसान समुदाय का समर्थक है। उसके सामने किसान सबसे अधिक प्रतिष्ठित व्यक्ति है। वह किसानों का अधिकारी नहीं है बल्कि किसान उसके अधिकारी हैं। किसान उसकी दया पर आश्रित नहीं हैं बल्कि वह किसानों की दया पर आश्रित है। वह तो किसानों का अनुयायी है और किसान विकास अधिकारी हैं। फिर भी ग्रामीण प्रबन्धक को इस बात का गर्व होता है कि वह देश के जरूरतमन्दों के लिए काम कर रहा है और उसके मालिक ईमानदार, मेहनती, और दयालु हैं। भले ही उसके रास्ते में, कितनी ही बाधाएं हों। वह ईमानदारी व निष्ठा से कामयाबी हासिल कर सकता है।

शहरी प्रबन्धक का काम तो सुनिश्चित है, सुनियोजित है और उसके पास एक मजबूत तंत्र है। ग्रामीण प्रबन्धक का काम तो साफ-साफ परिभाषित है। एक योजना चल रही है पर उसके लिए मजबूत और कार्यकुशल कर्मचारियों का तंत्र नहीं है। उसे योग्य कर्मचारियां के चयन तक में बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। जब उसे योग्य कर्मचारियों के चयन करना पड़ता है तो संगठन के कम वेतन और दूसरी कठिनाइयां आड़े आती हैं।

परिशिष्ट 'क'

तालिका : भारत में प्रव्रजन की स्थिति

(दस लाख में)

क्र० सं०	वर्ग	1971 में प्रव्रजकों की संख्या					
		पुरुष	प्रतिशत	महिला	प्रतिशत	योग	प्रतिशत
1.	एक गांव से दूसरे गांव	25.3	53.5	87.7	78.8	113.0	71.3
2.	शहर से गांव	2.9	6.1	5.0	4.4	7.9	4.9
3.	गांव से शहर	12.4	26.1	11.3	10.3	23.7	15.0
4.	एक शहर से दूसरे शहर	6.8	14.3	7.2	6.5	14.0	8.8
	योग	47.4	100.0	112.2	100.0	158.6	100.0

तालिका 2 : शहरी क्षेत्रों में रहने वालों का प्रतिशत

वर्ष	शहरी क्षेत्रों में रहने वालों का प्रतिशत
1901	10.82
1911	10.29
1921	11.18
1931	11.99
1941	13.87
1951	17.29
1961	17.97
1971	19.90
1981	23.00

ऊपर बताई गई सभी कठिनाइयों के बावजूद, उसका भविष्य निष्क्रिय नहीं है । उसका काम कठिन तो है और संघर्ष से जूझना भी पड़ता है पर "जीवन में विश्राम कहां, विश्राम जहां वह जीवन क्या ?" ग्रामीण उत्पादक संगठनों के प्रबन्धक ऐसे भी हैं जो छोटी उम्र में भी ऊंचे उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर पहुंचे और जिन्होंने नाम कमाया और अपने को सफल समझा ।

क्या कोई ग्रामीण प्रबन्धक की महत्वपूर्ण और जबर्दस्त आवश्यकता से वास्तव में नकार सकता है ? □

अनुवाद : ब्रजलाल उनियाल,
के० –38 एफ, साकेत,
नई दिल्ली-110017

चलो चलें गांव की ओर

चलो चलें गांवों की ओर, आओ चलें गांव की ओर !
फैली है दूर तक खेतों में हरियाली ।
मनहर मंजरियों से मस्त हुई हर डाली ।।
नृत्य करते मैदानों में मदमाते मोर, आओ चलें गांव की ओर !
उठती है लाकत गंध पीली सरसों फूली ।
मनहरते मनहारी बैंगन, गोभी, मूली ।।
चरते हैं खेतों में झुण्ड–झुण्ड ढोर, आओ चलें गांव की ओर !
बैठे लौकी कुम्हड़ा रग्घु की छानी में ।
पंडित जी कहें कथा तुलसी की वानी में ।।
घंटा-घड़ियाल बजे मंदिर में नित भोर, आओ चलें गांव की ओर !
अनजाने लोग जहां भेदों-विभेदों से ।
उन्मीलित लोक चक्षु, जगत ज्योति वेदों से ।।
राम कृष्ण का "चौहान" भरा पोर-पोर, आओ चलें गांव की ओर ।

लेख राम चौहान, "हिमाचली"
ग्राम व पोस्ट, बात्तल,
वाया अरकी-173208
जिला सोलन (हि० प्र०)

गलता की घाटी में पेड़ों की हरियाली

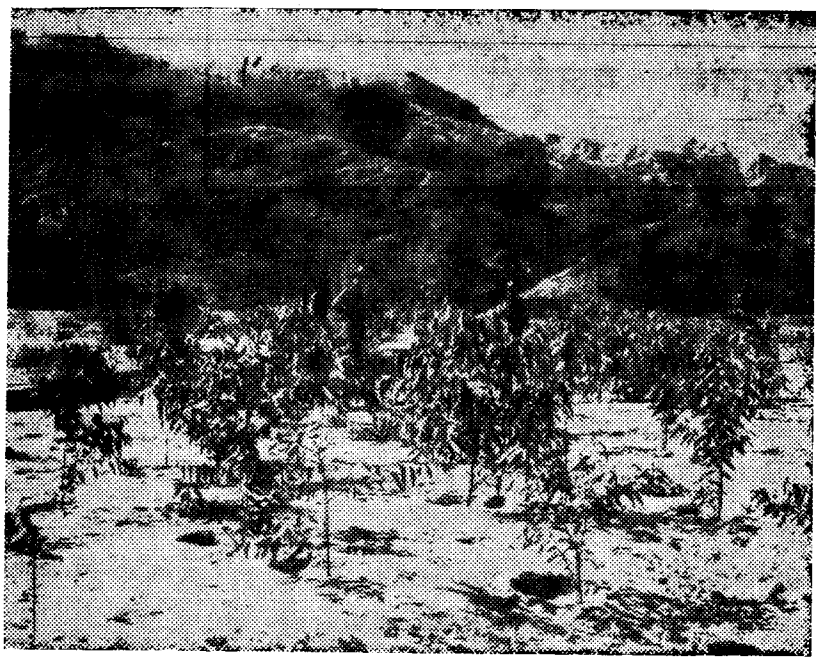

गलता जी का रेतीला क्यारा जहां प्रादेशिक सेना ने कई हजार वृक्ष लगाए।

पेड़ और वन पर्यावरण में केवल संतुलन ही नहीं बनाए रखते बल्कि जमीन की रेत-मिट्टी को भी मजबूती और स्थिरता देते हैं। जुलाई, 1981 में जयपुर में लगातार चार दिन और चार रात तक हुई मूसलाधार बरसात से भारी क्षति हुई। यह महसूस किया गया कि यदि पहाड़ियों के नीचे के रेतीले ढालू इलाकों में पेड़ होते तो मिट्टी का कटाव इतना न होता। पेड़ों के न होने से पहाड़ियों के नीचे पानी के रास्ते में आने वाली रेत-मिट्टी बहकर सब जगह भर गई साथ ही जमीन के कटाव से गहरे चौड़े नाले बन गए, जिनमें पानी का बहाव बढ़ा तो रास्ते की कच्ची बस्तियां मकान और पुल तक बह गए और प्रसिद्ध तीर्थस्थल गलता जी टूट कर बिखर गया। उसके कुंडों में रेत व पत्थर भर गए।

आगे ऐसी किसी बरसात से होने वाले विनाश के बचाव के उद्देश्य से जयपुर स्थित प्रादेशिक सेना की इकाई ने गलता घाटी के इलाके में वृक्ष लगाने का काम हाथ में लिया जिससे इसके आस-पास की रेतीली जमीन मजबूत हो सके। गलता जी के मन्दिर के ऊपर रेत का लम्बा-चौड़ा और ऊंचा टीला है जो दो पहाड़ियों के बीच में है। इस टीले को क्यारा कहते हैं। पहाड़ियों से निकलकर नीचे आने वाले पानी की रोक के लिए राज्य सरकार द्वारा छोटा बांध पहले ही बना दिया गया है। किन्तु बरसात में ऊपर से अधिक पानी आने पर पहाड़ियों के पत्थर और क्यारे की रेत भी बड़ी मात्रा में बहकर आने का खतरा बना रहता।

पिछली बरसात में जुलाई-अगस्त में प्रादेशिक सेना के जवानों ने गलता जी के ऊपर व रेतीले क्यारा पर पांच हजार पौधे लगाए। इसके बाद जवानों ने गलता घाटी के नीचे के लगभग 4 किलो-मीटर लम्बे रेतीले टीलों वाले क्षेत्र में भी 20 हजार पौधे लगाए। ये पौधे अब लगभग तीन फुट तक ऊंचे हो गए हैं और लगाए हुए कुल पौधों में से 80 प्रतिशत सुरक्षित हैं और बढ़ रहे हैं। इनकी देखभाल वन विभाग कर रहा है।

गलता घाटी क्षेत्र में विलायती व देशी बबूल, एरंड, झाड़ियां और सरकंडे उगाए गए थे। इन पौधों को बढ़ाने के लिए अधिक पानी की जरूरत नहीं होती।

गलता जी के ऊपर क्यारा पर ऊंची घास और सरकंडे लग जाने से ऊपर से आने वाले पानी के साथ रेत नहीं बहेगी और इससे यह ऐतिहासिक स्थल सुरक्षित सा हो गया है। गलता की घाटी अब बढ़ते हुए इन पेड़-पौधों से सजीव हो उठी है। □

खेतिहर मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी

हमारे देश में रोजगार क्षेत्र के असंगठित क्षेत्र में खेतिहर मजदूर एक बड़ा अंग है। खेतिहर मजदूरों के असंगठित होने के कारण उनकी समस्याएं भी अनेक हैं और इसका आंशिक कारण यह है कि वे समाज के उपेक्षितम वर्ग से सम्बन्धित रहे हैं। ये लोग सामाजिक और आर्थिक दोनों ही प्रकार के शोषण का शिकार हैं।

कृषि क्षेत्र की मजदूरी सम्बन्धी समस्याएं संगठित औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं से भिन्न हैं। इसके प्रमुख कारण हैं: (क) कृषि मौसम पर आधारित है। इस क्षेत्र में कभी तो बहुत काम होता है कभी कुछ भी नहीं, (ख) अधिकांश खेत छोटे, बिखरे और अलाभकर हैं, (ग) विश्व मानदण्डों की तुलना में भारतीय कृषि की उत्पादकता कम है। इससे औसत किसान की मजदूरी देने की क्षमता कम हो जाती है, (घ) कृषि क्षेत्र में मजदूर, जो प्रायः अ-दक्ष हैं, संख्या में मांग या जरूरत से बहुत अधिक है, और (ङ) मजदूरी का एक अच्छा खासा भाग नकद, वस्तुओं के रूप में या दस्तूरी के तौर पर अदा किया जाता है।

खेतिहर मजदर

वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में पांच करोड़ 40 लाख खेतिहर मजदूर हैं। यह 1971 की जनगणना की संख्या चार करोड़ 75 लाख से 13.68 प्रतिशत अधिक है।

अब तक के अध्ययनों से पता चला है कि विविध प्रकार की आधिकारिक और गैर-आधिकारिक योजनाओं से ग्रामीण क्षेत्रों के मजदूरों को अकसर लाभ नहीं पहुंचता। ग्रामीण क्षेत्र के मजदूरों में संगठन और जागरूकता का अभाव इसका प्रमुख कारण है। इसीलिए सरकार के सतत् प्रयास रहे हैं कि विविध प्रकार के उपायों द्वारा इन असंगठित मजदूरों की आय में वृद्धि और रहन-सहन तथा काम की दशाओं में सुधार लाकर इनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति को ऊपर उठाया जाए।

संविधान और योजनाएं

हमारे संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में से एक में यह निहित है कि राज्य अपनी नीति इस प्रकार निर्धारित करेगा कि नागरिकों, पुरुषों और महिलाओं को जीवन-यापन के समुचित साधन उपलब्ध कराने का अधिकार सुरक्षित रहे। विकास योजनाओं द्वारा इस सिद्धान्त को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के प्रयास किए गए। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) की रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में नियोजन का मुख्य उद्देश्य यह है कि विकास-प्रक्रिया को इस भांति आरम्भ किया जाए कि जन-जीवन स्तर सुधर सके और लोगों को अधिक सुखी बना सके और हर व्यक्ति को नए-नए व्यवसाय चुनने के अवसर मिल सकें। छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) में रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न करने, बेहतर मजदूरी दरें सुनिश्चित करने और ग्रामीण मजदूरों के संगठन कायम करने पर बल दिया गया है।

मजदूरी का नियम

मजदूरों की मजदूरी की अदायगी, मजदूरी अदायगी अधिनियम, 1936 और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 जिसे बाद में संशोधित किया गया, के अधीन की जाती है। मजदूरी अदायगी (संशोधित) अधिनियम, 1976 का कार्य क्षेत्र पूरा भारत है और यह फैक्ट्री अधिनियम, 1948 के अधीन परिभाषित किसी भी कारखाने के सेवायुक्त व्यक्तियों पर लागू होता है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 और ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926 खेतिहर मजदूरों पर लागू होते हैं। व्यावसायिक आधार पर चल रहे कृषि फार्मों पर औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 भी लागू होता है। कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952 निर्दिष्ट बागान में सेवायुक्त कृषि मजदूरों पर लागू होता है। ट्रैक्टर या मशीन और बिजली की मदद से होने वाली खेती में काम करने वाले मजदूरों पर कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923 लागू होता है।

न्यूनतम मजदूरी सम्बन्धी कानून

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम एक सामाजिक कानून है जो ऐसे मजदूरों को सुरक्षा प्रदान करता है जिनका संगठन की कमी के कारण शोषण किया जाता है और वे एकतरफा तौर पर निश्चित दरों पर मजदूरी करने पर मजबूर हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए कृषि कार्यों में लगे मजदूरों पर यह कानून लागू किया गया है जिससे मजदूरी के सम्बन्ध में उनको सुरक्षा प्राप्त हो सके।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम

इस अधिनियम की मुख्य बातें इस प्रकार हैं:—

(1) इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले मजदूरों के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित करने की व्यवस्था;

(2) पांच वर्ष से अधिक की अवधि गुजरने से पूर्व ही न्यूनतम वेतन दरों का पुनर्रीक्षण और उनमें संशोधन करने की व्यवस्था;

(3) न्यूनतम वेतन दरों के निर्धारण/संशोधन हेतु प्रक्रिया निर्धारित करने की व्यवस्था;

(4) निर्धारित न्यूनतम वेतन दरों पर मजदूरों को वेतन अदायगी की व्यवस्था;

(5) काम के सामान्य घंटों से अधिक समय तक काम करने की दशा में ओवर-टाइम वेतन की अदायगी की व्यवस्था;

(6) काम के घंटों का निर्धारण और सवेतन साप्ताहिक अवकाश की व्यवस्था;

(7) अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम वेतन तथा अन्य सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु निरीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था;

(8) अधिसूचित वेतनदरों से कम वेतन अदायगी होने, ओवरटाइम के एवज में वेतन अदायगी न होने और अवकाश के दिनों के काम के लिए वेतन अदायगी सम्बन्धी दावों की सुनवाई करने और उन पर निर्णय देने हेतु एक दावा सुनवाई प्राधिकरण (क्लेम्स अथारिटी) नियुक्त करने की व्यवस्था है; और

(9) अधिनियम की धाराओं का उल्लंघन करने वाले मालिकों पर जुर्माना करने या उनको कैद की सजा देने की व्यवस्था है।

श्रम मंत्री सम्मेलन

श्रम मंत्रियों के सम्मेलन के अगस्त 1981 के 32वें अधिवेशन में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत, न्यूनतम वेतन सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर विचार किया गया था।

इस सम्मेलन में अन्य बातों के अलावा ये निर्णय लिए कि (1) न्यूनतम वेतन गरीबी की रेखा के नीचे न जाए, (2) जहां तक सम्भव हो और जैसा कि कुछ राज्यों ने किया भी है, न्यूनतम वेतन को उपभोक्ता मूल्य सूचकांक से सम्बद्ध करने का कोई तरीका निकाला जाए, और (3) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के दोषों के निवारणार्थ और इसे अधिक प्रभावपूर्व बनाने के उद्देश्य से इसमें संशोधन के लिए एक व्यापक विधेयक पेश किया जाए।

सम्मेलन के निर्णयों के अनुसार न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 में संशोधन के प्रस्ताव के पुनर्रीक्षण के लिए सितम्बर, 1981 में एक कार्यकारी दल गठित किया गया। दल की एक बैठक 16 अक्तूबर, 1981 को हुई। इसने अन्य बातों के अलावा सामान्य न्यूनतम वेतन के सम्बन्ध में एक नवीन नीति की सिफारिश की जिसके अधीन सामान्यतः उन सभी मजदूरों की, जो न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की परिधि में न आते हों, खाद्य पदार्थ, ईंधन और आवास जैसी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

खेतिहर मजदूरों का न्यूनतम वेतन केन्द्रीय और राज्य/केन्द्र शासित क्षेत्र की सरकारें निर्धारित करती हैं। इस सम्बन्ध में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा अपनाए गए उपायों का विवरण निम्न प्रकार है :—

राज्यों द्वारा किए गए कार्य

न्यूनतम वेतन व्यवस्था को लागू करना 1975 के 20-सूत्री कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग था। अतः सरकार इसका निरन्तर पुनर्रीक्षण करती रही है। जुलाई 1980 के श्रम मंत्री सम्मेलन के 31वें अधिवेशन ने एक सिफारिश यह की थी कि आवश्यक होने पर दो वर्ष में एक बार या उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में 50 पैसे की वृद्धि होने पर, दोनों में से जो भी पहले हो, न्यूनतम वेतन का पुनर्रीक्षण हो और उसमें संशोधन किए जाएं। इस सिफारिश के आधार पर 16 राज्य सरकारों और केन्द्र शासित क्षेत्रों के प्रशासनों ने जुलाई, 1980 में खेतिहर मजदूरों के न्यूनतम वेतनों में संशोधन किया। ये राज्य/केन्द्र शासित क्षेत्र हैं— आन्ध्र प्रदेश, असम, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, केरल, मणिपुर, नगालैंड, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बंगाल, अंडमान निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली और पांडिचेरी। इन राज्यों और क्षेत्रों में खेतिहर मजदूरों को 4 रु० 25 पैसे से 14 रु० प्रति दिन तक वेतन मिलता है। अन्य राज्यों तथा प्रशासनों द्वारा 4 रु० से 12 रुपये तक मजदूरी दी जाती है किन्तु उनमें से अधिकांश ने मजदूरी की दरों में संशोधन के लिए कार्यवाही आरम्भ कर दी है।

केन्द्र सरकार द्वारा बनाए गए उपाय

सितम्बर, 1980 के 12 माह के औसत मासिक मूल्य सूचकांक 380 के आधार पर केन्द्र सरकार ने केन्द्रीय कृषि क्षेत्र में कृषि मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी दर में संशोधन करने के लिए नवम्बर 1981 में एक प्रस्ताव की अधिसूचना दी थी। इसके द्वारा निम्नतम श्रेणी के मजदूरों को प्रतिदिन 6 रु० से लेकर 8.75 रु० देने का प्रस्ताव रखा गया था।

1948 के अधिनियम में न तो न्यूनतम वेतन निश्चित किया गया है और न इसका कोई मापदण्ड निश्चित किया गया है। इसीलिए श्रम सचिवों की एक समिति इस उद्देश्य से गठित की गई कि वह न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए कोई मापदण्ड तैयार करे और उसके साथ ही महंगाई भत्ते की दरें तय करने सम्बन्धी एक फार्मूला तैयार करे। केन्द्रीय श्रम मंत्रालय ने, बिहार, गुजरात और कर्नाटक राज्यों में यह जानने के लिए कि न्यूनतम वेतन व्यवस्था को खासतौर पर कृषि क्षेत्र में अमल में लाने के लिए किस सीमा तक कार्य किया गया है, एक पुनर्मूल्यांकन किया।

नया 20-सूत्री कार्यक्रम

प्रधानमंत्री द्वारा 14 जनवरी, 1982 को एक नए 20-सूत्री कार्यक्रम की घोषणा करने पर श्रम मंत्रालय ने कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित व संशोधित करने और उसे प्रभावपूर्ण ढंग से कार्यान्वित करने के लिए एक कार्य प्रणाली निश्चित की।

इस प्रणाली में निहित उपाय इस प्रकार थे : (1) सम्बन्धित राज्य सरकारों को न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए सहमत किया जाए, (2) जिन राज्यों में प्रस्तावों की अधिसूचना जारी कर दी गई है या न्यूनतम मजदूरी दर में संशोधनों के लिए समितियां गठित कर दी गई हैं वहां संशोधन कार्य में तेजी लाई जाए, (3) जिन राज्यों में ऐसा नहीं हुआ है, उन्हें न्यूनतम मजदूरी दरों में संशोधन कार्य आरम्भ करने के लिए सहमत किया जाए, (4) न्यूनतम वेतन अधिनियम में प्रभावी सुधार लाने के लिए संशोधन सम्बन्धी प्रस्तावों को अंतिम रूप प्रदान करने में तेजी लाई जाए और (5) केन्द्र द्वारा संचालित योजना कार्यक्रम विकसित करने की व्यावहारिकता पर विचार किया जाए ताकि निर्धारित न्यूनतम मजदूरी की अदायगी को सुनिश्चित करने वाले कार्यकारी तंत्र को अधिक मजबूत बनाने में राज्य सरकारों को सहायता दी जा सके।

कार्य योजना को अमल में लाने के उद्देश्य से श्रम मंत्रालय द्वारा प्रतिमाह एक अन्तर्विभागीय बैठक बुलाई जाती है जिसमें प्रगति का जायजा लिया जाता है। इन बैठकों में लिए गए निर्णयों के फलस्वरूप राज्य सरकारों/प्रशासनों को परामर्श दिए गए कि :

(1) यह सुनिश्चित किया जाए कि जहां कहीं भी आवश्यक हो न्यूनतम मजदूरी दरें निर्धारित हों और जुलाई 1980 के श्रममंत्री सम्मेलन की सिफारिशों के अनुसार उनका पुनर्रीक्षण हो और उनमें संशोधन किया जाए। सम्मेलन की सिफारिश थी कि आवश्यक होने पर दो वर्ष में एक बार या उपभोक्ता सूचकांक में 50 पैसे की वृद्धि होने पर, दोनों में से जो भी पहले हो, न्यूनतम वेतन का पुनर्रीक्षण हो और उसमें संशोधन किया जाए।

(2) अधिसूचना पद्धति अपनाकर न्यूनतम मजदूरी के मामलों में होने वाली देरी तथा प्रारम्भिक और अंतिम अधिसूचनाएं जारी करने के बीच की अवधि को कम किया जाए;

(3) सावधिक निरीक्षणों, नियम-उल्लंघन करने वालों के विरुद्ध मुकदमें और अधियाचनाओं के निपटारों द्वारा कार्यान्वयन को अधिक सुनिश्चित तथा मजबूत बनाने के लिए कर्मचारियों की स्थिति का पुनर्रीक्षण किया जाए;

(4) राज्य के जिन क्षेत्रों में स्थिति दूभर होती है और जहां अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों या कमजोर वर्गों के खेतिहर मजदूरों की बहुतायत है वहां सर्वप्रथम न्यूनतम मजदूरी पर अमल कराने की ओर ध्यान दिया जाए;

(5) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को लागू करने तथा बंधुआ मजदूरों की मुक्ति और पुनर्वास तथा ग्रामीण श्रमिकों के संगठन बनाने सम्बन्धी कार्यक्रम की एक सामान्य नीति विकसित करने के साथ-साथ इसको वर्तमान समन्वित ग्रामीण विकास तथा राष्ट्रीय ग्रामीण सेवा योजना कार्यक्रमों से एकीकृत किया जाए; और

(6) खेतिहर मजदूरों के लिए निर्धारित अथवा संशोधित मजदूरी दरों को, विविध साधनों तथा क्षेत्रीय प्रचार संगठनों द्वारा निरन्तर प्रचारित करने का एक कार्यक्रम तैयार किया जाए।

नई योजना

उपर्युक्त उपायों के अलावा कुछ नई स्कीमें आरम्भ की जा रही हैं और अन्य तरीके अपनाए जा रहे हैं ताकि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू किया जा सके। आवश्यकता पड़ने पर राज्य सरकारों को खेतिहर क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी व्यवस्था लागू करने के लिए अपने-अपने कार्यकारी तंत्र को सुदृढ़ बनाने में सहायता प्रदान करने के लिए केन्द्र द्वारा नियोजनाधीन एक स्कीम आरम्भ करने का प्रस्ताव है। इस स्कीम के अधीन प्रत्येक विकास खण्ड में एक निरीक्षक नियुक्त करने का प्रस्ताव है। इस कार्य पर होने वाला खर्चा केन्द्र और राज्य सरकारें आधा-आधा उठाएंगी।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम में संशोधन करने के प्रस्तावों को अंतिम रूप देने का कार्य हो रहा है ताकि अधिनियम अधिक अच्छा बन सके। विकास खण्ड स्तर पर अवैतनिक संगठनकर्ता नियुक्त कर ग्रामीण श्रमिकों को संगठित कर की एक योजना आठ राज्यों में आरम्भ हो चुकी है। ये राज्य हैं—आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश। इन राज्यों में विकास खण्ड स्तरीय 415 अवैतनिक संगठनकर्ता नियुक्त करने का प्रस्ताव है। मोटे तौर पर ये संगठनकर्ता मजदूरों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों तथा संगठन की महत्ता का ज्ञान कराएंगे और वे उन्हें सहकारी संगठन, ट्रेड यूनियन या किसी अन्य प्रकार के उपयुक्त संगठन की स्थापना में सहायता प्रदान करेंगे।

कृषि क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी व्यवस्था के कार्यान्वयन की देखभाल करने के लिए राज्यों में भिन्न स्तरों पर त्रि-दलीय समितियां स्थापित करने का एक कार्यक्रम चालू किया गया है। एक अन्य योजना के अधीन ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरों की जानकारी के लिए कार्यक्रम आरम्भ किया जाएगा जिससे मजदूरों को यह पता चल सके कि सम्बन्धित अधिनियम के अधीन न्यूनतम वेतन सम्बन्धी उनके अधिकार और उन्हें प्राप्त होने वाले अन्य लाभ क्या हैं?

राज्य सरकारों और प्रशासनों को समय-समय पर यह परामर्श दिया जाता है कि वे न्यूनतम वेतन दरों में समय पर संशोधन करना सुनिश्चित करें और अपने कार्यकारी तंत्र को सुदृढ़ बनाएं ताकि मजदूरों को विधिसम्मत न्यूनतम वेतन मिल सके।

मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी दिलाने का एक अन्य महत्वपूर्ण उपाय यह है कि राष्ट्रीय ग्रामीण सेवायोजन कार्यक्रम को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू किया जाए। यह कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्र के मजदूरों की आय में केवल वृद्धि करने में ही सहायक नहीं होगा बल्कि खेतिहर मजदूरों की मजदूरी दरों को स्थिरता भी प्रदान करेगा। इससे ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी में भी काफी कमी आ सकेगी। इसलिए लाभकारी कार्यक्रमों को लागू करने के सम्बन्ध में कदम उठाए जा रहे हैं ताकि समाज के कमजोर वर्गों को उन कार्यक्रमों से पूरा लाभ मिल सके जो उनके लिए बनाए गए हैं। □

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों को जनवरी–फरवरी 1983 के दौरान सहायक अनुदान के केन्द्रीय अंश के रूप में 6.17 करोड़ रुपये की धनराशि बंटित की गई है। अभी तक कार्यक्रम के अंतर्गत 1982-83 के दौरान 93.36 करोड़ रुपये की धनराशि बंटित की गई है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम

कार्यक्रम के अंतर्गत 665.41 लाख रुपये की धनराशि तथा 55322 टन खाद्यान्नों की मात्रा बंटित की गई है और समीक्षाधीन माह के दौरान 5241 टन खाद्यान्नों की मात्रा को पुनर्वेधीकृत भी किया गया है जिनका ब्यौरा नीचे दिया गया है :—

कार्यक्रम के अन्तर्गत चालू वर्ष के दौरान अब तक 12282.20 लाख रुपये की धनराशि बंटित की गई है इसमें कार्यक्रम के अंतर्गत खाद्यान्नों का मूल्य भी शामिल है।

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम/मरुभूमि विकास कार्यक्रम

सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम के अंतर्गत हरियाणा राज्य को 14 लाख रुपये की धनराशि बंटित की गई है तथा मरुभूमि विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत जम्मू तथा काश्मीर राज्य को 16.84 लाख रुपये की धनराशि बंटित की गई है।

ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण

समीक्षाधीन अवधि के दौरान "ट्राइसेम" के अन्तर्गत आधारभूत ढांचे को मजबूत बनाने के लिए विभिन्न राज्य सरकारों को 6.22 लाख रुपये की धनराशि बंटित की गई है।

प्रशिक्षण पाठयक्रमों, गोष्ठियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन

समीक्षाधीन अवधि के दौरान विभिन्न संस्थाओं को गोष्ठियां, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम तथा कार्यशालाएं आयोजित करने के लिए 18,271 रुपये की धनराशि बंटित की गई है।

कृषि विपणन

2 फरवरी, 1983 को इंडिया इंटरनेशनल सैन्टर, नई दिल्ली में कृषि विपणन के बारे में एक राष्ट्रीय गोष्ठी आयोजित की गई थी। इस गोष्ठी का मुख्य उद्देश्य कृषि विपणन तथा ग्रामीण गोदामों से संबंधित केन्द्रीय क्षेत्र की योजनाओं को तेजी से कार्यान्वित करने में आने वाली अड़चनों का पता लगाना था तथा इनको दूर करने हेतु उपचारी उपाय सुझाना था। केन्द्रीय संगठनों के अलावा, इस गोष्ठी में 19 राज्यों तथा 4 केन्द्र शासित क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था।

3 फरवरी, 1983 को हुई संस्वीकृति समिति की बैठक में बाजारों के विकास के लिए 2 करोड़ रुपये की केन्द्रीय सहायता मंजूर करने के लिए प्रस्ताव अनुमोदित किए गए। □

क्रं० सं०	राज्य का नाम	बंटित नकद निधियां (लाख रुपये में)	बंटित खाद्यान्न (टनों में)	पुनर्वेधीकृत खाद्यान्न (टनों में)
1	2	3	4	5
1.	गुजरात	—	2326	742
2.	हिमाचल प्रदेश	—	—	1019
3.	जम्मू तथा काश्मीर	—	—	730
4.	मध्य प्रदेश	—	4120	—
5.	उड़ीसा	—	9100	367
6.	तमिलनाडु	—	—	2390
7.	आन्ध्र प्रदेश	—	3135	—
8.	केरल	350.68	—	—
9.	महाराष्ट्र	—	16820	—
10.	पंजाब	128.35	—	—
11.	पाण्डिचेरी	—	211	—
12.	राजस्थान	173.80	3650	—
13.	सिक्किम	6.58	122	—
14.	त्रिपुरा	6.00	450	—
15.	मिजोरम	—	133	—
16.	अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह	—	3650 255	—
17.	पश्चिम बंगाल	—	15000	—
		665.41	55322	5248

नए जीवन की ओर निरन्तर अग्रसर हमारे आदिवासी

जगमोहन लाल माथुर

हर साल 26 जनवरी के अवसर पर नई दिल्ली में राजपथ के दोनों ओर खड़ा अपार जन-समूह अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए सनद्ध सेना के तीनों अंगों के जवानों की परेड देखने के साथ ही भारत की विविधतापूर्ण सांस्कृतिक झांकी का भी अवलोकन करता है। इस अवसर पर देश के कोने-कोने से आए लोकनर्तकों की टोलियों और सांस्कृतिक झांकियों में हमारे उन आदिवासियों के जीवन की झलक भी मिलती है जो देश के पूर्वोत्तर अंचल ही नहीं अपितु मध्यवर्ती, पश्चिमवर्ती और दक्षिणवर्ती पहाड़ियों और जंगलों में बसे हुए हैं। इन्हें देखकर हमें यही अहसास नहीं होता है कि भारत कितनी विविधतापूर्ण संस्कृति का धनी है बल्कि यह भी महसूस होता है कि किस प्रकार सदियों से अलग-थलग पड़े, ये देश के महत्वपूर्ण लोग, वर्ष-प्रतिवर्ष मुख्य धारा के अधिक निकट आते जा रहे हैं और भारतीय परिवार के सक्रिय सदस्य बन रहे हैं।

कोई चार करोड़ की जनसंख्या वाले ये आदिवासी लगभग 250 अनुसूचित जन-जातियों के हैं। इनमें से कुछ की संख्या 50 लाख है तो कुछ ऐसे भी समूह हैं जिनके केवल 100–200 परिवार हैं। हिमालय से हिन्द-महासागर के किनारे तक और पश्चिम में अरब सागर से लेकर पूर्व की दुर्गम पर्वत मालाओं के बीच बसे हुए इन आदिवासियों की कोई 105 अपनी भाषाएं हैं। और करीब 225 उपभाषाएं बोलते हैं। आदिवासी जनसंख्या देश की कुल आबादी की 7 प्रतिशत है और इनमें से अधिकांश मध्यवर्ती भारत के उड़ीसा, बिहार, मध्य-प्रदेश, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान राज्यों में फैले हुए हैं। इन राज्यों में आदिवासी जनजातियों की कुल आबादी कोई तीन करोड़ है और देश की कुल आदि-वासी जनसंख्या का 78.7 प्रतिशत इन्हीं राज्यों में रहता है। मध्य प्रदेश में आदि-वासियों की संख्या राज्य की कुल जनसंख्या का 24 प्रतिशत है जोकि सर्वाधिक है। वैसे देश के पूर्वोत्तर अंचल के राज्य नगालैंड, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम और मेघालय में रहने वाले आदिवासियों की संख्या इन राज्यों की कुल जनसंख्या के 80 प्रतिशत से भी अधिक है पर जनसंख्या के हिसाब से कुल मिलाकर इन पर्वतीय राज्यों में 20 लाख से अधिक आदिवासी नहीं हैं।

आदिवासियों में शिक्षा प्रसार

देश की स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्रीय सरकार के कन्धों पर यह विशेष जिम्मेदारी आई कि राष्ट्रीय परिवार के जो लोग दूरस्थ दुर्गम और बीहड़ इलाकों में रहते हैं और समाज के अन्य वर्गों की तुलना में पिछड़ गए हैं, उन्हें आगे बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्न करने की जरूरत है। 26 जनवरी, 1950 से लागू किए गए देश के गणतन्त्रीय संविधान में इसी आशय को दृष्टिगत रखते हुए कई प्रावधान रखे गए हैं। अनुच्छेद 40 में कहा गया है कि समाज के कमजोर वर्ग, खासतौर से अनुसूचित जातियों व जनजातियों, के साहित्यिक व आर्थिक हितों को बढ़ाने और उन्हें सामाजिक

अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से बचाने के लिए राज्य को विशेष प्रयत्न करना होगा। अनुच्छेद 339 (2) में संघ को कार्याधिकार दिया गया है कि वह आदिवासियों के कल्याण के लिए विशेष योजनाएं बनाने और कार्यान्वित कराने के लिए निर्देश दें।

आदिवासियों की उन्नति के लिए केन्द्रीय सरकार ने जो नीति अपनाई है उसका मूलाधार हमारे प्रथम प्रधानमंत्री, जवाहर लाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित पंचशील के सिद्धान्त ह, जिनका विवेचन उन्होंने 1958 में प्रकाशित विशिष्ट लेखक डा० वेरियर एलविन की पुस्तक "फिलासफी फार नेफा" की भूमिका में किया था। इस नीति का सार तत्व यह है कि उनका विकास, उनकी प्रतिभा के अनुरूप होना चाहिए तथा उनकी जीवन-पद्धति में बाधा नहीं डाली जानी चाहिए। 1960 में बनाए गए ढेबर आयोग ने भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए कहा कि आदिवासियों को ऐसा नहीं लगना चाहिए कि उन पर कुछ थोपा जा रहा है। उनकी जीवन-पद्धति में बिना बाधा डाले उन्हें राष्ट्रीय परिवार का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

वैसे तो प्रथम पंचवर्षीय योजना से भी पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण के लिए कार्य किया जाने लगा पर आदिवासियों की उन्नति के लिए व्यवस्थित योजना बनाने और उद्देश्यपूरक ढंग से काम करने का सिलसिला पांचवीं पंचवर्षीय योजना के साथ शुरु हुआ। इस योजना में आदिवासियों से संबंधित विकास की कार्यनीति के अन्तर्गत यह तय किया गया कि आदिवासियों के विकास के लिए उपयोजना होनी चाहिए जो राज्यों की मुख्य योजना का हिस्सा हो। यह कार्य नीति तैयार करते समय इस बात का ध्यान रखा गया कि देश की विभिन्न अनुसूचित/आदिम जातियों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति में काफी अन्तर है इसलिए प्रत्येक के लिए पृथक से सोचने और कार्यक्रम तैयार करने की आवश्यकता है। यह भी महसूस किया गया कि जनसंख्या के हिसाब से कुछ क्षेत्रों में आदिवासी जनसंख्या का अधिक जमाव है और अन्य क्षेत्रों में वे छितरे हुए हैं। तीसरी बात यह भी महसूस की कई कि कुछ बहुत प्राचीन आदिम जातियां हैं जो विकास की दृष्टि से बहुत पिछड़ी हुई हैं और उनके लिए अलग से ध्यान देने की जरूरत होगी। उपयोजना प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि आदिवासी विकास के लिए निर्धारित राशि उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए खर्च होती है और उसे अन्य काम में नहीं खर्च किया जा सकता। एक और विशेषता यह है कि इसमें सभी साधनों का एकत्रीकरण करना संभव होता है। इस प्रणाली के अंतर्गत राज्य की योजना, केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा खर्च की जाने वाली राशि, विशेष केन्द्रीय सहायता तथा संस्थागत वित्त व्यवस्था, इन सभी चारों साधनों से धन प्राप्त हो जाता है। प्रारम्भ में उपेक्षा यह थी कि एसे सभी आदिवासी जनसंख्या वाले क्षेत्र जिनमें आदिवासी जनसंख्या कुल का 50 प्रतिशत से अधिक है, इसके अन्तर्गत आ जाए। इस कार्यनीति के अन्तर्गत आदिवासी जनसंख्या बहुल राज्य अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, नगालैंड, लक्षद्वीप और दादरा नगर हवेली को शामिल नहीं किया गया क्योंकि इन राज्यों की मुख्य योजनाएं आदिवासी जनसंख्या के हितों को ही ध्यान में रखकर तैयार की जाती है।

इस उपयोजना प्रणाली का लाभ यह हुआ कि पांचवीं पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक देश की 63 प्रतिशत आदिवासी जनसंख्या लाभान्वित होने लगी। छठी योजना के अन्त तक इसे बढ़ाकर 75 प्रतिशत कर देने का लक्ष्य रखा गया है।

कार्यनीति अब यह है कि क्षेत्र विशेष और आदिवासी जनजाति को देखकर उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं का अनुमान लगाकर नीचे के स्तर से योजना बनाई जानी चाहिए। उपयोजना प्रणाली के अन्तर्गत 180 समन्वित आदिवासी विकास परियोजनाएं स्थापित की गई हैं। योजना का प्रारम्भ इसी बुनियादी इकाई से शुरु होता है। प्रत्येक परियोजना क्षेत्र का काम पंचवर्षीय योजना तैयार करना और उसके हिस्से के रूप में वार्षिक योजना या कार्यक्रम बनाना है। इस प्रणाली से हर क्षेत्र विशेष की जरूरतों पर ध्यान जाता है और साधनों का बटवारा उसी के अनुसार किया जाता है। 1974-79 के पांच वर्षों की अवधि के लिए बनाए गए आदिवासी उपयोजना में शोषण से मुक्ति को सबसे अधिक प्राथमिकता दी गई। इसके बाद कृषि और संबंधित कार्यकलाप—जैसे कि छोटी सिंचाई योजनाएं, सहकारिता, ऋण व्यवथा और हाट व्यवस्था

पूर्वोत्तर आदिवासी गांव की एक झलक।

तथा समाज कल्याण सेवाओं को रखा गया। छोटी सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत 1974–79 की अवधि में सबसे अधिक काम महाराष्ट्र में हुआ जहां 3,33,000 हैक्टेयर अतिरिक्त भूमि में छोटे सिंचाई साधन उपलब्ध किए गए। उसके बाद उड़ीसा का नम्बर है जहां 1,03,400 हैक्टेयर क्षेत्र में छोटे सिंचाई साधन उपलब्ध हुए। भूमि संरक्षण के उपायों के अन्तर्गत जमीन को ठीक करने का सबसे ज्यादा काम 1974–79 की अवधि में बिहार में हुआ जहां 62,940 हैक्टेयर जमीन को लाभ पहुंचा। उसके बाद गुजरात का स्थान है जहां 40,600 हैक्टेयर जमीन का संरक्षण किया गया। इन पांच वर्षों की अवधि में बागवानी के अन्तर्गत सबसे अधिक काम बिहार में हुआ जहां 50,000 हैक्टेयर जमीन में फलदार वृक्ष लगाए गए। आदिवासियों की हड़पी गई जमीन को आदिवासियों को पुनः दिलाने के अन्तर्गत सबसे अधिक काम आंध्र प्रदेश में हुआ जहां 20,000 हैक्टेयर भूमि आदिवासी मालिकों को दिलाई गई। उड़ीसा में इन पांच वर्षों की अवधि में पांच हजार से अधिक गांवों में पेयजल की व्यवस्था की गई बिहार के 2,300 महाराष्ट्र के 1,200 और उड़ीसा के 1,000 गांवों में बिजली पहुंचाई गई।

इन पांच वर्षों में कुल मिलाकर राज्यों की योजनाओं व केन्द्रीय विशेष सहायता के रूप में 917 करोड़ रुपये खर्च किए जा चुके हैं। 1980–81 में आदिवासी उपयोजना के लिए राज्यों से 3549.34 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया है। 470 करोड़ रुपये केन्द्रीय विशेष सहायता के रूप में दिए जाएंगे।

पिछली उपयोजना की समीक्षा से यह तो सिद्ध हो जाता है कि कुल मिलाकर उपयोजना प्रणाली की धारणा सफल रही। आदिवासी क्षेत्रों में उसके अन्तर्गत काफी काम होने लगा है। पर फिर भी जो खामियां रह जाती हैं उन्हें दूर करने के लिए ठोस कार्रवाई करने की आवश्यकता है। आजकल 19 राज्यों और केन्द्रशासित क्षेत्रों में इस प्रणाली के अन्तर्गत काम हो रहा है।

गत वर्षों में मुझे देश के कई राज्यों के आदिवासी इलाकों में स्वयं जाकर विकास कार्य देखने का अवसर मिला है। मेरे विचार से गुजरात के आदिवासी क्षेत्रों में काफी अच्छा काम हुआ है। जहां के परियोजना अधिकारियों को व्यापक प्रशासनिक अधिकार दिए गए हैं और उनके विवेक पर खर्चा करने के लिए भी काफी धनराशि उपलब्ध रहती है। इस विवेकाधीन राशि के अन्तर्गत परियोजना प्रशासक परिस्थिति के अनुरूप तत्काल कार्रवाई कर सकते हैं। दक्षिणी गुजरात के राजपोपला क्षेत्र में मैंने देखा कि वहां के परियोजना निदेशक ने आदिवासी किशोरों को स्कूलों में बनाए रखने के लिए एक अनोखी योजना शुरु की। इन छात्रों को गांव से कस्बे के माध्यमिक स्कूल तक आने के लिए साइकिलें दिलाई गई हैं। साइकिल की कीमत लागत के लगभग 400 रुपये में से 200 रुपये आदिवासी परियोजना के अन्तर्गत सहायता के रूप में दिए गए और शेष 200 रुपये छात्रों ने अपने पास से दिए। साइकिल के कारण छात्रों का स्कूल में प्रतिदिन और समय पर आना संभव हो सका है। इसी प्रकार वहां कुछ क्षेत्रों में आदिवासी आश्रम-शालाओं में छात्राओं के लिए सोने के वास्ते दरियों की सप्लाई की गई। कभी छोटी-छोटी कमियों के कारण आदिवासी बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। अगर लग्नशील परियोजना अधिकारी नजर रखें तो बच्चों को स्कूल छोड़ने से रोका जा सकता है। गुजरात के वन विभाग ने भी आदिवासियों के कल्याण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। डांग जिले में आदिवासियों के लिए वन विभाग ने एक स्थान पर झोपड़ियां बनवाई हैं जहां निरन्तर बांसों की सप्लाई की व्यवस्था की है। इससे आदिवासी परिवार बांस की टोकरियां आदि बनाते हैं। वन विभाग ही बांस की टोकरियों को एकत्र कर बिक्री के लिए ले जाता है।

उड़ीसा में गंजाम जिले के चन्द्रगिरी क्षेत्र और फूलबानी जिले में आदिवासियों को फलों के पेड़ लगाने के लिए प्रेरित करने में काफी सफलता मिली है। आदिवासियों को सरकारी भूमि पर लगाए गए फलदार वृक्षों का मालिक घोषित कर दिया गया है। सप्ताह में दो बार सहकारी समिति आदिवासियों से खरीदने की व्यवस्था करती है और तत्काल उन्हें पैसा अदा कर देती है। चन्द्रगिरी क्षेत्र में संतरे के पेड़ों से कई पहाड़ियां पट गई हैं और संतरों की बिक्री से गरीब आदिवासी परिवारों को बहुत लाभ पहुंचा है। आम और काजू के पेड़ भी अन्य स्थानों पर लगाए गए हैं।

मध्य प्रदेश में बस्तर और झाबुआ जिलों के दौरे में मैंने देखा कि अब लगभग सभी गांवों में हैंडपम्प लग गए हैं। जहां से आदिवासी पानी प्राप्त करते हैं। पीने के पानी संबंधी कठिनाई के दूर हो जाने से ये आदिवासी बहुत संतोष का अनुभव कर रहे हैं। बस्तर जिले में पांच-पांच सौ रुपये की मामूली नकद सहायता देकर और सरकार की तरफ से मुफ्त जमीन देकर आदिवासी परिवारों को अपना छोटा सा कच्चा मकान उपलब्ध कराया गया है। आदिवासियों को मकान बनाने हेतु बांस व बल्लियां मुफ्त दी जाती हैं। और वे खुद मेहनत करके अपने मकान बनाते हैं। राजस्थान में उदयपुर जिले में आदिवासी परिवारों की मछुआ सहकारी समितियां बनाकर और झील में मछली पकड़ने का अधिकार देकर उन्हें लाभ पहुंचाया गया है। कुछ युवकों को बीड़ी बनाने का प्रशिक्षण देकर नियमित रोजगार दिलाया गया है। सभी राज्यों में काफी शिक्षण संस्थाएं खोली गई हैं। सबसे बड़ी बात आदिवासियों के जीवन में यह आई है कि उनमें नया आत्मविश्वास जगा है। वे सरकारी अधिकारियों से या बाहर वालों से डरते नहीं हैं। खुलकर अपनी समस्याओं पर बातचीत करते हैं। दरअसल यह आत्मविश्वास ही उनकी उन्नति का मूल साधन बन रहा है। □

भारतीय अर्थव्यवस्था : 1982 की उपलब्धियां

केदार नाथ गुप्त

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक वातावरण की प्रतिकूलता के बावजूद, 1982 का साल भारत के लिए अत्यंत संतोषजनक रहा है । इस वर्ष की सर्वोत्तम उपलब्धियां हैं—मुद्रा-स्फीति की दर में सराहनीय कमी। मुद्रा स्फीति की दर 1979–80 में बीस प्रतिशत से अधिक थी, जो 1982 में 2.6 प्रतिशत के स्तर पर आ गई । फलस्वरूप उपभोक्ता वस्तुओं के थोक भावों में अत्यन्त कमी आई । यह स्थिति देश को आत्मनिर्भर बनाने में सहायक होगी ।

आइए, इस वर्ष का संक्षिप्त जायजा लिया जाए ।

इस बाढ़ और सूखे के कारण गत वर्ष कृषि उपज को आघात पहुंचा । इसके बावजूद धान की सरकारी खरीद 40 लाख टन हुई । पिछले वर्ष की तुलना में यह एक लाख टन अधिक है । अनुमान है कि रबी की मौजूदा फसल को गत सितम्बर मास की वर्षा से लाभ पहुंचेगा और इस वर्ष अनाज उत्पादन की स्थिति में कमी नहीं होगी । अच्छे बीज, खाद और ऋण उपलब्धि के अलावा सिंचाई साधनों को इसका श्रेय दिया जा सकता है ।

औद्योगिक क्षेत्र में इस्पात, बिजली और परिवहन जैसे बुनियादी उद्योगों की स्थिति भी बेहतर पाई गई । इसका ब्यौरा केन्द्रीय वित्त मंत्री, श्री प्रणव मुखर्जी ने हाल ही में वित्तीय लेखकों को एक गोष्ठी में दिया । उन्होंने बताया कि कोयले का उत्पादन अप्रैल, 1982 से सितम्बर, 1982 तक के छह महीने की अवधि में इससे पूर्व की संगत की अवधि में हुए उत्पादन के मुकाबले छह प्रतिशत अधिक था । इसी प्रकार विद्युत उत्पादन आठ प्रतिशत अधिक रहा । रेलवे यातायात में 5 प्रतिशत की वृद्धि हुई । औद्योगिक वातावरण भी अनुकूल रहा । 1982 में गैर-सरकारी कम्पनियों को 770 करोड़ रुपये की शेयर पूंजी जुटाने की अनुमति मिली जबकि इससे पिछले वर्ष में यह अनुमति 576 करोड़ रुपये तक सीमित रही थी । इसी प्रकार विदेशी सहयोग से स्थापित होने वाली संयुक्त क्षेत्र की कम्पनियों के 550 प्रस्तावों को स्वीकृति दी गई । इसकी तुलना में पिछले वर्ष केवल ऐसे 389 प्रस्ताव मंजूर किए गए थे । औद्योगिक ऋण की कठिनाइयों को देखते हुए हाल ही में रिजर्व बैंक ने किन्हीं क्षेत्रों के लिये ऋण उपलब्धि में उदार दृष्टिकोण अपनाने की घोषणा की है । यद्यपि इस वर्ष विकास दर कम ही रहने की संभावना है, पर यह स्वीकार करना होगा कि आगे आने वाले वर्षों में विकास दर में वृद्धि के लिए ठोस और सशस्त्र आधार उपलब्ध रहेगा ।

दस वर्ष पूर्व जिस तेल संकट ने दुनिया भर में तहलका मचा दिया था उस तेल की समस्या पर भारत ने सराहनीय सफलता प्राप्त की है । चालू वर्ष में भारत ने दो करोड़ 10 लाख टन तेल का उल्लेखनीय उत्पादन किया, जबकि इससे पूर्व 1979–80 में केवल एक करोड़ 18 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ था। तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग के अध्यक्ष, कर्नल एस० पी० वाही की इस संबंध में दी गई सूचना काफी आशावादी है । तेल निकालने के लिए 12 नए रिग प्राप्त किए गए हैं । अब समुद्र के अलावा अन्य तटीय क्षेत्रों से तेल निकालने के प्रयास किए जा रहे हैं । इसके लिये भूगर्भीय सर्वेक्षण को आधार माना गया है । यह भी ध्यान देने की बात है कि पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत अब तक बनने वाली सालाना योजनाओं के बजाए अब 20 वर्षीय योजनाएं कम्प्यूटर की सहायता से बनाई जाएंगी । इससे हमें अपने मौजूदा स्रोत साधनों का अधिकतम उपयोग करने और लाभ उठाने में सहायता मिलेगी । इससे हमारी कार्य क्षमता 200 प्रतिशत तक बढ़ने की संभावना है । इसी लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में आजमाईश के तौर पर एक दस वर्षीय योजना तैयार की गई है । इसके लिए 32 करोड़ रु० मूल्य के कम्प्यूटर की सहायता से आंकड़ें संकलित करने का काम तेजी से आगे बढ़ रहा है । 1990 तक भूमि पर खुदाई के लिए 190 रिग प्राप्त किए जाएंगे और समुद्र तल की खुदाई के लिए काम आने वाले मौजूदा रिगों की संख्या बढ़ाकर तिगुनी कर दी जाएगी । श्री वाही के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग नए डिवीजन और नई कम्पनियां स्थापित करके इस कार्य का तेज गति से संचालन कर सकेगा । स्वदेशी रिग प्राप्त करने के लिए "भेल" (भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स) को संभावित जरूरतों से अवगत करा दिया गया है ताकि वह अगले 10 से 20 वर्ष तक के लिए "रिगों" की सप्लाई कर सके ।

"रुग्ण तेल कुओं" को छह मास के भीतर स्वस्थ बनाने की योजना है ।

भारतीय अर्थव्यवस्था के सशक्त होने पर भी उसके सम्मुख भुगतान संतुलन की चुनौती मुंह वाए खड़ी है । इसके मुख्य कारण हैं : कच्चे तेल और तेल पदार्थों का भारी आयात बिल और परम्परागत जिन्सों के निर्यात को आघात । निर्यात को आघात पहुंचने का कारण है अन्तर्राष्ट्रीय मंदी, विकसित देशों का संरक्षणवाद तथा कुछ विकासशील देशों की कड़ी प्रतिस्पर्धा । इस समस्या पर काबू पाने के लिए निर्यात बढ़ाने और आयात का विकल्प ढूंढने का सरकार का आह्वान उचित ही है । इसके लिए विशेषतया तेल पदार्थों, खाद, इस्पात, सीमेंट, एल्यूमीनियम और खाद्य तेलों का उत्पादन यथा संभव बढ़ाकर आयात पर अंकुश लगाना जरूरी है । इसके अलावा हमें देश के उत्पादन की गति को तेज करना होगा ।

उत्पादन दर बढ़ाने के लिए रिजर्व बैंक के गवर्नर, डा० मनमोहन सिंह ने हमारे देशवासियों को "बचत करने" का ठीक ही परामर्श दिया है। वर्तमान बचत दर जो लगभग 20 या 22 प्रतिशत है वह अपर्याप्त मानते हैं। इसकी तुलना में यह दर चीन में 35 से 36 प्रतिशत है। "बचत" को प्रोत्साहन देने के लिए यह जरूरी होगा कि बचत करने वाले को उचित लाभ भी मिले। इसका अर्थ होगा कि बैंकों, शेयरों या सरकारी हुंडियों में लगाई जाने वाली बचत राशि की ब्याज दर या लाभांश राशि आकर्षक हो। फलस्वरूप उपलब्ध धन ऐसी योजनाओं में लगाया जा सकेगा जिनसे अधिक सामाजिक लाभ हो। साथ ही इससे हमें विदेशों में रहने वाले भारतीयों के धन को पूंजी निवेश के लिए आकर्षित करने में सहायता मिलेगी। इस दिशा में भारत सरकार ने पहले से ही उदारता की नीति अपनाई है। आशा है सरकार इस ओर अधिक ध्यान देगी, जिससे विदेशों में रहने वाले भारतीय विदेशों में धन नहीं रखेंगे अपितु भारत में धन भेजेंगे।

ज्ञातव्य है कि 1973 से 1978 तक प्रवासी भारतीयों ने बहुत अधिक धन भेजा था। उस समय हमारे सामने विदेशी मुद्रा का उपयोग कैसे किया जाए, यह समस्या पैदा हो गई थी। लेकिन आजकल स्थिति विपरीत है।

तेल उत्पादक देशों ने अपनी गतिविधियां कम कर दी हैं। विकसित देशों में मंदी के कारण वहां के भारतीयों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। इसी के परिणामस्वरूप 1979 से विदेशी मुद्रा की कमी भारत को खल रही है। आशा है कि सरकार अपने नए बजट में ऐसे उपाय करेगी कि विदेशी पूंजी को आकर्षित किया जा सके। इससे विकास दर को बढ़ावा भी मिलेगा और अर्थ-व्यवस्था भी सुधरेगी।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था के क्षितिज पर दूसरी सूर्य किरण है इसका मजबूत वित्त आधार। इसी कारण हमने विदेशों से बहुत अधिक ऋण नहीं लिया है और जो कुछ लिया है वह सोच-समझ कर लिया है। पिछले दो वर्षों में प्राप्त ऋण बहुत कम है। इससे हमें लाभ हुआ है और विदेशी ऋण बाजार में भारत की साख बढ़ी है। □

ट्राइसेम के अधीन

ग्रामीण युवकों को

परम्परागत हस्तशिल्प में

प्रशिक्षण

लकड़ी पर खुदाई और नक्काशी का काम राजस्थान के रेगिस्तानी बाड़मेर जिले का परम्परागत हस्तशिल्प है। वहां की सूखी जलवायु के कारण स्थानीय रूप से उपजने वाली लकड़ी बारीक, नक्काशी के काम में उपयुक्त होती है। यहां यह कला लंबे अरसे से पारिवारिक धरोहर के रूप में फलती-फूलती रही है। गत दो अक्तूबर से नेहरू युवक केन्द्र बाड़मेर ने ग्रामीण युवकों को अपना रोजगार शुरू करने में प्रशिक्षण की योजना (ट्राइसेम योजना) के अन्तर्गत आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के युवकों को इस कला में प्रशिक्षण देने का काम हाथ में लिया। केन्द्र में अब तक 15 युवकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। ये सभी अब अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ हैं। यह कार्यक्रम जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के सहयोग से चलाया जा रहा है।

केन्द्र में इस समय 32 अन्य ग्रामीण युवक लकड़ी पर नक्काशी के काम का प्रशिक्षण ले रहे हैं। इनमें अनुसूचित जाति के पांच, अनुसूचित जनजाति का एक और अन्य जातियों के 26 ग्रामीण युवक हैं। बाड़मेर में पहले नक्काशीदार चौकियां, कुर्सियां, दरवाजे आदि घरेलू उपयोग की चीजें बनाई जाती थीं। अब बदलते समय के साथ उनका स्थान मोढ़े, दीवान, मेज व पलंगों ने ले लिया है। इस शैली का फर्नीचर अब दिल्ली, बंबई और कलकत्ता जैसे महानगरों में भी लोकप्रिय हो रहा है। इसलिए केन्द्र पर इन्हीं को बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे उन्हें अच्छी आमदनी हो सके। केन्द्र पर प्रशिक्षित ग्रामीण युवकों ने उत्साहपूर्वक परम्परागत कारीगरों के समान अच्छा काम करने की क्षमता दिखाई है।

ट्राइसेम योजना के तहत ग्रामीण युवक-युवतियों को लकड़ी पर खुदाई के अलावा अन्य कई रोजगार वाले कामों में भी नेहरू युवक केन्द्र प्रशिक्षण दे रहा है। केन्द्र में ग्रामीण युवकों को कपड़ों की रंगाई-छपाई का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। यहां प्रशिक्षित युवक 20 रु० रोज तक कमा लेते हैं। ग्यारह लोग पहले प्रशिक्षण ले चुके हैं और 6 युवक इस समय प्रशिक्षण ले रहे हैं।

इसी तरह बाड़मेर में महिलाओं द्वारा कांच पर कशीदाकारी का काम लोकप्रिय रहा है। नेहरू युवक केन्द्र में इसका प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। अब तक 42 महिलाएं प्रशिक्षण ले चुकी हैं और 38 को इस समय प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सिलाई, कढ़ाई, कशीदाकारी, गलीचा बनाना और बुनाई आदि शामिल हैं।

अब तक नेहरू युवक केन्द्र, बाड़मेर, में कुल मिलाकर 528 लोगों को विभिन्न व्यवसायों में प्रशिक्षण मिल चुका है। यह प्रशिक्षण तीन से छः माह की अवधि के हैं। इसके लिए युवाओं का चयन संबंधित विकास अधिकारी के माध्यम से किया जाता है तथा प्रत्येक प्रशिक्षार्थी को इस दौरान 125 रु० प्रतिमाह दिए जाते हैं। □

सदा आगे ही आगे

नवें एशियाई खेलों का शानदार आयोजन करने के लिए भारत को दुनिया भर से बधाई सन्देश प्राप्त हो रहे हैं।

बड़े-बड़े स्टेडियम देखते ही देखते तैयार कर लिए गए। रंगीन दूरदर्शन के माध्यम से अपने देश के भी और अन्य देशों के भी लाखों-करोड़ों लोगों ने इन खेलों का भरपूर आनन्द उठाया। इन सब कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिए कम्प्यूटरों, इलेक्ट्रानिक एक्सचेंजों, माइक्रोवेव और उपग्रह प्रणाली जैसे नवीनतम वैज्ञानिक साधनों का उपयोग अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया।

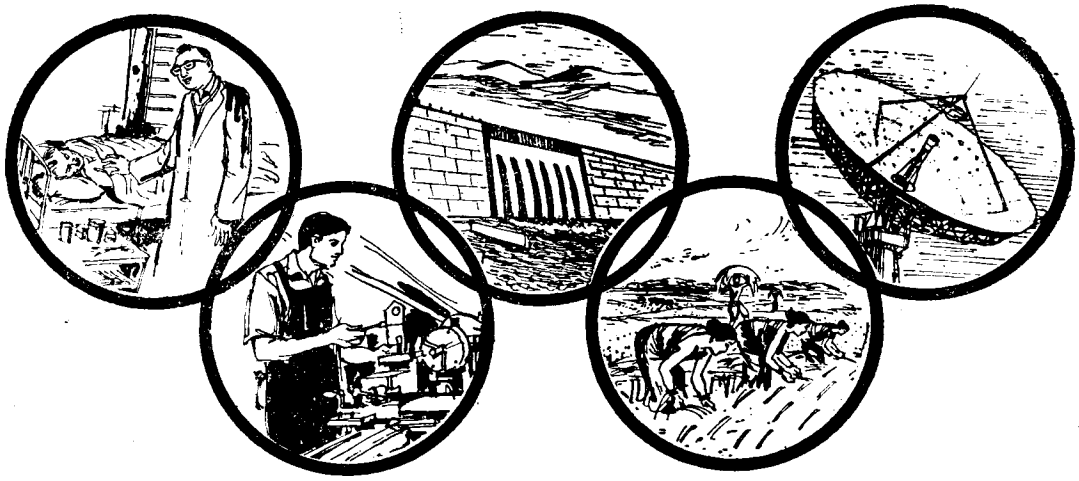

यह इस बात का बड़ा सुन्दर उदाहरण है कि मिले-जुले प्रयास और कठिन परिश्रम से कितनी बड़ी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

यदि हम इसी भावना और उत्साह से काम करें तो राष्ट्र के विकास के अन्य क्षेत्रों में भी इतनी बड़ी सफलता क्यों नहीं प्राप्त कर सकते?

आइए हम सब मिल कर एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में जुट जाएं।

davp 82/565

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में सहकारिता

दुर्गा शंकर शुक्ल

सहकारी आन्दोलन राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग बन गया है। देश के प्रायः सभी आर्थिक क्षेत्रों में प्रवेश करते हुए सहकारिता ने ऐसा व्यापक स्वरूप ग्रहण कर लिया है कि अब उसका कोई विकल्प नहीं बन सकता। ग्रामीण स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक सहकारी संस्थाओं का एक संगठित जाल बन गया है। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में इसका गहरा प्रभाव है। देश के लगभग 90 प्रतिशत गांव आज सहकारी आन्दोलन की सेवाएं ले रहे है।

सहकारी क्षेत्र के ऐसे विस्तार का प्रमुख कारण यही है कि देश की सामाजिक आर्थिक स्थितियों के सन्दर्भ में विकास की जो राष्ट्रीय नीति अपनाई गई है यह उसके अनुकूल है।

भारत वर्ष एक ऐसा विकासशील देश है जहां कृषि की प्रधानता है तथा आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग का बाहुल्य है। देश एक ओर गहरी आर्थिक विषमता का शिकार है तो दूसरी ओर सामाजिक जीवन स्तर पिछड़ा हुआ है। भारत किसानों तथा निर्बल समाज को सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से ऊपर उठाने के लिए ऐसे साधनों का उपयोग करना चाहता है जिसमें व्यक्ति की स्वतन्त्रता और समानता का अधिकार कायम रहे। राष्ट्रीय कार्यों में व्यक्ति अपने को समान रूप से भागीदार महसूस करें।

यथार्थ में स्वतन्त्रता एवं समानता युग की सबसे बड़ी मांग है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सुप्रसिद्ध इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी ने लिखा है कि मानव जाति के इतिहास में बीसवीं शताब्दी का स्मरण इस शताब्दी में अणुबम के अविष्कार अथवा धर्म एवं साम्यवाद के संघर्ष के कारण नहीं वरन् समानता के सिद्धान्त के प्रादुर्भाव एवं प्रयोग के कारण किया जाएगा।

समानता की प्राप्ति तथा देश में प्रजातांत्रिक समाजवाद की स्थापना हेतु जिन साधनों एवं मार्गों का अवलम्बन किया गया है उनमें सहकारिता प्रमुख है। सहकारिता एक ऐसा संगठन है जो निर्बल व्यक्तियों को स्वेच्छापूर्वक संगठित होने का अवसर प्रदान करता है तथा समानता के व्यवहार के द्वारा उन्हें स्वावलम्बी बनाता है। सहकारी समितियों के सदस्य पारस्परिक सहयोग से अपने सम्मिलित ज्ञान का उपयोग करके अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान खोजते हैं। सहकारिता ही सबसे तर्कसंगत मार्ग है, ऐसे सामाज के निर्माण के लिए जो शासन और शोषण से मुक्त हो, जहां लाभ ही आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य न हो, जहां वर्ग संघर्ष न हो, अभाव न हो, जहां आर्थिक सुरक्षा के साथ राजनैतिक स्वतन्त्रता एवं सामाजिक बन्धुता उपलब्ध हो।

सहकारिता के इन्हीं अन्तर्निहित गुणों के कारण स्वतन्त्रता के बाद इसे राष्ट्रीय नीति का अभिन्न अंग बनाया गया और पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी क्षेत्र को आधारभूत स्थान मिला। राष्ट्र पुरुष पंडित जवाहर लाल नेहरू, जिन्हें राष्ट्र निर्माता माना जाता है, की सहकारी आन्दोलन पर गहरी आस्था थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि दो विभिन्न उग्र प्रणालियों के बीच सन्तुलन स्थापित करने का सहकारी आन्दोलन एक शक्तिशाली माध्यम है। सम्पूर्ण देश को सहकारितामय बन जाना चाहिए। देश में आज जो सहकारी आन्दोलन है वह मूलतः पंडित नेहरू की देन है।

योजनाबद्ध विकास

यद्यपि सहकारिता का आधुनिक रूप में श्रीगणेश हमारे देश में सन् 1904 में को-आपरेटिव सोसाइटीज एक्ट बनने के साथ हुआ किन्तु ब्रिटिश शासन काल में उसके उद्देश्य सीमित थे। जन आन्दोलन के रूप में न उसका विकास हो सका न उसके उद्देश्य और आदर्श ही सुनिश्चित हो पाए थे। स्वतन्त्रता के बाद जब राष्ट्र त्वरित और सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए प्रयत्नशील हुआ तभी योजनाओं में सहकारी क्षेत्र को प्रमुख स्थान देते हुए उसके विस्तार और विकास का कार्यक्रम अपनाया गया।

प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में सहकारी आन्दोलन के विस्तार और विविधीकरण पर जोर दिया गया। द्वितीय योजना के समय ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की सिफारिशें मान्य

हो जाने से शासकीय सहायता से सहकारी आन्दोलन देश में तेजी से विविध क्षेत्रों में विस्तार पा सका।

तीसरी योजना में सहकारी क्षेत्र को और व्यापक बनाने पर बल दिया गया जिससे सहकारिता से मनुष्य को अवसर से लाभ उठाने की स्वतन्त्रता के साथ-साथ बड़े पैमाने पर संगठित प्रबन्ध और संगठन का लाभ प्राप्त हो सके। तीसरी योजना में यह बात स्वीकार की गई कि किसानों, मजदूरों तथा उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखते हुए सहकारिता के क्षेत्र को जितना बढ़ाया जाएगा उतना ही वह सामाजिक स्थिरता, रोजगार बढ़ाने तथा त्वरित आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण बनता जाएगा। चौथी और पांचवीं योजना में भी क्रमशः सहकारी बैंक क्षेत्र के विस्तार तथा सुदृढ़ीकरण के कार्यक्रम अपनाए गए।

वर्तमान में सहकारी आन्दोलन भारत में जिस स्थिति में है, उसे पूरी तरह सन्तोषजनक तो नहीं कहा जा सकता किन्तु आकार की दृष्टि से दुनिया में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। विश्व की समस्त सहकारी संस्थाओं के कुल सदस्य लगभग 35 करोड़ हैं, जिसमें 12 करोड़ सदस्य सिर्फ भारत वर्ष में हैं। सहकारी आन्दोलन के विकास के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी संगठन है जिसमें भारतवर्ष का प्रभावकारी स्थान है।

भारत के सहकारी आन्दोलन ने यद्यपि कई क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य किए हैं किन्तु कृषि के क्षेत्र में आज भी उसकी मुख्य भूमिका है। देश में हरित क्रान्ति को सफल बनाने तथा खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता लाने में सहकारी आन्दोलन का बहुत बड़ा योगदान है।

कृषि साख

कृषि के क्षेत्र में किसानों की प्रायः सभी प्रकार की आवश्यकताएं सहकारी संस्थाओं के द्वारा पूरी की जाती हैं। उत्पादन में सहायता के लिए अल्पकालीन और मध्यकालीन ऋण उपलब्ध किया जाता है तथा भूमि सुधार, सिंचाई उपकरण के लिए दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध किया जाता है। अल्पकालीन, मध्यकालीन ऋण के लिए सहकारी संस्थाओं का 3 स्तरीय ढांचा काम कर रहा है। ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक ग्रामीण सहकारी समितियां, जिला स्तर पर केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा राज्य स्तर पर राज्य सहकारी बैंक। दीर्घकालीन ऋण के लिए अधिकांश राज्यों में दो स्तरीय ढांचा ही काम कर रहा है। जिला स्तर पर प्राथमिक जिला सहकारी भूमि विकास बैंक और राज्य स्तर पर राज्य सहकारी भूमि विकास बैंक।

30 जून 1981 को सम्पूर्ण देश में 95,187 प्रारम्भिक कृषि साख समितियां, 337, केन्द्रीय सहकारी बैंक और 27 राज्य सहकारी बैंक कार्यरत रहे। दीर्घकालीन ऋण के क्षेत्र में 19 राज्य स्तरीय भूमि विकास बैंकों ने 841 शाखाओं तथा 890 प्राथमिक जिला भूमि विकास बैंकों के माध्यम से दीर्घकालीन ऋण वितरण का कार्य किया। 30 जून, 1981 को प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों का 2200 करोड़ रूपये का ऋण बकाया रहा। प्रतिवर्ष 1500 करोड़ रुपये से अधिक का अल्पकालीन, मध्यकालीन ऋण इन सहकारी संस्थाओं के द्वारा किसानों को वितरित किया जाता है। वर्तमान में कृषि साख के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि कमजोर वर्ग की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। रिजर्व बैंक द्वारा 20 प्रतिशत की सीमा बांधी गई है किन्तु इन संस्थाओं ने अपने उपलब्ध साधनों का 40 प्रतिशत ऋण कमजोर वर्गों को वितरित किया। दीर्घकालीन ऋण के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय विस्तार हुआ है। 30 जून, 1981 तक कुल 410 करोड़ रु० का दीर्घकालीन ऋण किसानों को वितरित किया गया।

सहकारी साख के विकास के सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह भी हुई कि कृषि एवं ग्रामीण विकास हेतु संस्थागत साख के प्रबन्ध के सम्बन्ध में कमेटी की सिफारिश का प्रकाशन हो गया है, जिसकी सिफारिश के अन्तर्गत कृषि एवं ग्रामीण विकास के राष्ट्रीय बैंक की स्थापना हो चुकी है। इस बैंक के साथ सहकारी साख व्यवस्था का कैसा समन्वय होगा यह आने वाला समय ही प्रकट करेगा।

सहकारी विपणन

सहकारी क्षेत्र में विपणन सहकारी संस्थाएं भी कृषि उपज के क्रय-विक्रय तथा कृषि उपकरण आदि किसानों को उपलब्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। राष्ट्रीय स्तर पर नेशनल कोओपरेटिव मार्केटिंग फेडरेशन (नाफेड), 29 राज्य स्तरीय विपणन संघ, 380 जिला या क्षेत्रीय विपणन सहकारी समितियां तथा 3592 प्राथमिक विपणन समितियां देश में कार्यरत हैं। ये विपणन संस्थाएं खाद्यान्न खरीदी के क्षेत्र में शासन को उल्लेखनीय सहयोग दे रही हैं। वर्ष 1980–81 में गेहूं और धान की खरीदी विपणन संस्थाओं के माध्यम से 28 और 32 प्रतिशत हुई। कृषि उत्पादन में उपयोग आने वाली वस्तुओं का भी इन संस्थाओं के माध्यम से अच्छा वितरण हुआ। वर्ष 1980–81 में 1000 करोड़ रुपये का रासायनिक खाद तथा उन्नत बीज, कीटनाशक दवाएं और कृषि उपकरण क्रमशः 53 करोड़, 28 करोड़ तथा 17 करोड़ रुपये के वितरित हुए। देश में कुल रासायनिक खाद्य की खपत का 46 प्रतिशत विपणन संस्थाओं के माध्यम से प्रदान हुआ। सहकारी क्षेत्र में न केवल रासायनिक खाद्य के वितरण की व्यवस्था है बल्कि खाद्य उत्पादन का कार्य भी होता है। इफको तथा कृषक भारती कोआपरेटिव के अन्तर्गत खाद्य उत्पादन के विशाल कारखाने देश में स्थापित किए गए हैं। इफको ने 1980–81 में 245 करोड़ रुपये का खाद उत्पादित किया।

सहकारी प्रक्रिया

सहकारी क्षेत्र में प्रक्रिया संस्थाएं स्थापित कर किसानों को उपज का अधिकाधिक लाभ दिए जाने का प्रयत्न किया जा रहा है। देश में विभिन्न प्रकार की 1242 प्रक्रिया सहकारी संस्थाएं स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त 600 प्राथमिक विपणन समितियां तथा 21 राज्य स्तरीय विपणन संघ भी प्रक्रिया का काय कर रहे हैं।

सहकारी प्रक्रिया के क्षेत्र में सहकारी शक्कर कारखानों ने अच्छा कीर्तिमान

स्थापित किया है। देश में कुल उत्पाद का 56.4 प्रतिशत केवल सहकारी कारखाने शक्कर उत्पादित करते हैं।

दूसरी प्रक्रिया का महत्वपूर्ण क्षेत्र है सूत के कारखाने। देश में 64 स्पिनिंग मिल, 37 बुनकर सहकारी सूत तथा 27 उत्पादनों की सूत मिलें हैं। वर्ष 1980–81 में 1497 लाख स्पिनिंग मिल सूत काता गया। इसी प्रकार 830 लाख किलोग्राम धागा बुनाई का कार्य हुआ। सरकार द्वारा इस क्षेत्र में विशेष ध्यान दिया जा रहा है। भारत सरकार द्वारा एक कार्यकारी दल नियुक्त किया गया है, जो इन संस्थाओं की वित्तीय आवश्यकताओं का अध्ययन करेगा।

सहकारी प्रक्रिया का कार्य अन्य कई क्षेत्रों में भी फैलाया जा रहा है। तिलहन और तेल का उत्पादन उनमें से विशेष उल्लेखनीय है। तिलहन उत्पादक समितियां एक विशेष योजना के अन्तर्गत स्थापित की जा रही हैं। इस क्षेत्र में सफलता के लिए को-आपरेटिव लीग आफ० यू० एस० ए० के सहयोग का एक समझौता स्थापित हुआ है।

भंडारण व्यवस्था

भण्डारण की व्यवस्था कृषि क्षेत्र की एक बुनियादी आवश्यकता है। इस दिशा में भी सहकारी क्षेत्र में तेजी से काम किया जा रहा है। छठी योजना के प्रारम्भ में सहकारी क्षेत्र में 47 लाख टन उपज के भण्डारण की व्यवस्था थी। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम ने 20,000 गोदाम निर्मित करने की एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारम्भ की है जिसके लिए विश्व बैंक से सहायता प्राप्त करने का समझौता हुआ है। इन गोदामों से 10 राज्यों में 37 लाख टन भण्डार की क्षमता निर्मित होगी।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली

समाज के सभी वर्गों को आवश्यक उपभोक्ता वस्तुएं उपलब्ध कराने की दृष्टि से उपभोक्ता सहकारी भण्डारों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विशेष कार्यक्रम सौंपा गया है। इस कार्यक्रम में 16,000 प्राथमिक सहकारी उपभोक्ता भण्डार, करीब 500 थोक उपभोक्ता सहकारी भण्डार संघ, 15 राज्य उपभोक्ता भण्डार संघ हैं। राज्य विपणन संघों तथा राष्ट्रीय विपणन संघ (नेफेड) को सम्बद्ध किया गया है जो उल्लेखनीय सेवाएं दे रहे हैं। इस वितरण श्रृंखला में 70,000 फुटकर विक्रय केन्द्र तथा 250 विभागीय भण्डार काम कर रहे हैं। छठी योजना के अन्त तक फुटकर वितरण केन्द्रों की संख्या एक लाख तक हो जाएगी। भारत जैसे विशाल देश के लिए वितरण की इतनी व्यवस्था पर्याप्त नहीं कही जा सकती। किन्तु वितरण के क्षेत्र में सहकारिता का निश्चित ही उल्लेखनीय कार्य है।

कारीगरों की सहकारियां

कारीगरों तथा कामगारों को काम पर लगाने तथा आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में भी काफी कार्य हुआ है। देश में 40,000 औद्योगिक सहकारी समितियां कार्यरत हैं जिनमें 14,250 बुनकरों से संबंधित हैं। इनकी सदस्य संख्या 1,50,000 है। वित्तीय कठिनाइयों तथा कच्चे माल की उपलब्धता तथा उत्पादित माल के विक्रय की समस्या के कारण उस क्षेत्र की समितियों का अपेक्षित विकास नहीं हो सका किन्तु लाखों लोगों को रोजगार देना अपने आप में एक उपलब्धि है। नेशनल फेडरेशन आफ इंडस्ट्रियल को-आपरेटिव सोसाइटी द्वारा औद्योगिक सहकारी समितियों के विकास के सम्बन्ध में आवश्यक उपाय किए जा रहे हैं। बुनकर सहकारी समितियों की ओर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। छठी योजना के अन्त तक 60 प्रतिशत तक बुनकर सहकारी क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया जाएगा।

समाज के कमजोर वर्ग के लिए

समाज के कमजोर वर्ग के उत्थान में भी सहकारी समितियों का उल्लेखनीय योगदान है। कमजोर वर्ग से संबंधित हैं—आदिवासी, श्रमिक, दुग्ध, मत्स्यपालन, मुर्गीपालन आदि की समितियां। आदिवासी क्षेत्रों में विशेष योजना के अन्तर्गत बहुद्देश्यीय वृहताकार समितियों का गठन किया गया है, जिन्हें "लैम्पस" के नाम से भी जाना जाता है। इसके अतिरिक्त 2000 वन श्रमिक सहकारी समितियां कार्य कर रही हैं। जिनकी सदस्य संख्या 1.04 लाख है। 25,859 दुग्ध उत्पादक समितियां हैं, जिनकी सदस्य संख्या 23.12 लाख है। 4609 मत्स्यपालन सहकारी समितियां हैं जिनकी सदस्य संख्या 5.38 लाख है। इसी प्रकार देश में श्रमिक एवं मुर्गीपालन सहकारी समितियों की संख्या क्रमशः 9000 एवं 1200 है। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम द्वारा आदिम जाति एवं जनजाति समितियों को विकास के लिए विशेष सहायता दी जा रही है।

उपर्युक्त के अलावा और भी विभिन्न क्षेत्रों में सहकारी क्षेत्र का प्रवेश हुआ है जिनका इस छोटे लेख में उल्लेख करना संभव नहीं है, किन्तु दी गई जानकारी से यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में सहकारी आन्दोलन का उल्लेखनीय स्थान बन गया है। सहकारी क्षेत्र में ऐसी उपलब्धियों के बाद भी आन्दोलन की बुराइयों की आलोचना तो समझ में आती है किन्तु जब शासन के कर्णधारों की ओर से भी टिप्पणी की जाती है तो विवादास्पद स्थिति बन जाती है। निर्वाचित शासक और शासकीय अधिकारी यह कहकर अपने उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकते कि सहकारी आन्दोलन की असफलता के लिए शासकीय कार्यकर्त्ता जिम्मेदार हैं। जब शासन द्वारा सहकारी क्षेत्र को देश की मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में आधारभूत स्थान लिया गया है, पंचवर्षीय योजनाओं में उसका कार्यक्रम निर्धारित है, राष्ट्रीय सहकारी नीति निर्धारित है, अलग मंत्रालय काम कर रहा है, तब अन्य योजनाओं की भांति सहकारी क्षेत्र की योजनाओं की असफलताओं को क्यों नहीं स्वीकार करना चाहिए और सफलता के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। शासन ने सहकारी क्षेत्र को एक जन आन्दोलन के रूप में स्वीकार किया है। ऐसी स्थिति में यदि सहकारी क्षेत्र में सक्षम नेतृत्व तथा चुस्त प्रबन्ध व्यवस्था नहीं उभरती तो राष्ट्रीय नीति के कार्यान्वयन में कमियों का निरीक्षण किया जाना चाहिए।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है सहकारी आन्दोलन मात्र आर्थिक संगठन नहीं है । उसमें समाज दर्शन के गुण भी निहित हैं। अतः समाज के अधिकाधिक लोगों को सहकारी आन्दोलन की ओर आकर्षित करने के लिए प्रभावकारी जनसंचार व्यवस्था का सहारा लेना होगा। सक्षम नेतृत्व के निर्माण के लिए उपयुक्त शिक्षा, प्रशिक्षण और प्रभावकारी प्रचार माध्यम का भी उपयोग जरूरी है । इस कार्य के लिए जिला सहकारी संघ, राज्य सहकारी संघ और राष्ट्रीय सहकारी संघों की स्थापना की गई है किन्तु अर्थ और साधनों के अभाव में वे अपेक्षित काम नहीं कर पा रहे हैं। खेद का विषय है कि राज्य स्तर पर न तो उसके महत्व को समझा जा रहा है और न उसके लिए उपयुक्त साधन उपलब्ध किए जा रहे हैं। शिक्षा, प्रशिक्षण की ये संस्थाएं पूरी तरह उपेक्षित हैं। उपयुक्त शिक्षा और प्रशिक्षण के द्वारा ही आन्दोलन को सक्षम नेतृत्व और अच्छी प्रबन्ध व्यवस्था दी जा सकती है।

यशस्वी प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने नए बीस सूत्री कार्यक्रम के रूप में एक महत्वपूर्ण संकल्प और कार्यक्रम दिया है जिसमें समाज के कमजोर वर्ग का उत्थान निहित है। सहकारी आन्दोलन भी मूलतः समाज के कमजोर वर्ग के लिए है बीस सूत्री कार्यक्रम के अनेक ऐसे कार्य हैं जो सहकारी क्षेत्र में भी सम्पन्न किए जा सकते हैं। समय आ गया है कि सहकारी क्षेत्र के सभी सम्बद्ध कार्यकर्त्ता एवं शासन नये सिरे से स्थिति पर विचार करें तथा संकल्प लेकर सहकारी आन्दोलन को देश में अधिकाधिक लाभकारी और सफल बनाने का प्रयत्न करें। □

लघु कथा

— ऐसा फिर नहीं होगा —

कुलदीप जैन

एक स्थान पर सड़क रेल लाइन के नजदीक आ गई । "क्यों बहन, आजकल बड़ी व्यस्त रहती हो क्या बात है ?" "ऐसी बात नहीं बहन, दरअसल अब मुझे टाइम का बड़ा ख्याल रखना पड़ता है । । तुम तो देखती ही हो कि अब मेरे ऊपर से ठीक समय पर गाड़ियां गुजरती हैं । पहले ऐसा कहां था ?"

"हां, यह तो है ही । इस बार मैं एक नई बात देख रही हूं । पहले हर साल मेरे शरीर पर बसें फूंकी जाती थीं । शीशों के असंख्य टुकड़े मेरे शरीर में चुभते थे । इस बार ऐसा कुछ नहीं हुआ ।" ऐसा कहते ही सड़क को एक गड्ढा आता दिखाई दिया । वह थोड़ा इधर उधर हटी और पुनः रेल लाइन के निकट पहुंच गई ।

लाइन बोली—"हां बहन, नई बात है ही, इस बार मेरे यहां भी कोई हड़ताल नहीं हुई । पहले तो कभी भी हड़ताल हो जाती थी जिससे लाखों-करोड़ों रुपयों की हानि होती थी । जनता को जो कष्ट होता था, उसका हिसाब मत पूछो। पर लगता है अब ऐसा नहीं होगा ।" "होना भी नहीं चाहिए ।" सड़क दृढ़ता से बोली—"पर बहन, ऐसा संभव हुआ कैसे ?"

"ठीक से तो मुझे मालूम नहीं । पर जब मैं प्लेटफार्म और शहरों के बीच में गुजरती हूं तो कई जगह बड़े-बड़े बोर्ड लगे हुए देखती हूं, जिन पर लिखा रहता है—प्रधान मंत्री का 20 सूत्री आर्थिक कार्यक्रम अनुशासन पर्व और देश में नई जागृति लाने वाला है । इस बात का रेलों के ठीक समय से चलने से जरूर संबंध है।" "मुझे भी यही लगता है बहन।" सड़क बोली—"कई बसों और ट्रकों पर मैंने लिखा देखा है—कड़ी मेहनत दूर दृष्टि, पक्का इरादा, अनुशासन । अभी कल ही की बात है, जिस गांव से मैं गुजरती हूं, उस गांव में एक समारोह हो रहा था । वहां छोटे किसानों को कर्ज दिया जा रहा था, खाद दी जा रही थी । कोई नेता मंच से बोल रहा था—हमारी सदियों पुरानी बन्धुआ प्रथा खत्म हो रही है और भूमिहीन कृषि मजदूरों को जमीन के पट्टे दिए जा रहे हैं ।"

"मुझे भी याद आया बहन", लाइन बोली "स्टेशन पर एक दिन समारोह हो रहा था उसमें उन रिक्शे वालों को बैंक की ओर से कर्ज दिए जा रहे थे, जिनके पास अपने रिक्शे नहीं थे ।" इस पर सड़क बोली, "कुछ भी हो बहन, इस 20 सूत्री कार्यक्रम से पिछड़े लोगों के भाग्य जग गए हैं ।"

"यही नहीं बहन, एक दिन तो स्टेशन पर बड़ा शोर मचा हुआ था, बाद में पता चला कि देश का एक कुख्यात तस्कर, पकड़ा गया था । कुछ लोगों की बातचीत से मुझे यह भी पता चला कि आयकर अधिकारियों ने उन लोगों के यहां छापे मारे हैं, जिन्होंने अवैध तरीकों से धन जमा किया है ।"

अचानक सामने एक जंगल आता दिखाई दिया । सड़क ने मुड़ते हुए कहा—"अच्छा बहन, पांच मील दूरी पर हम दोनों फिर मिलेंगे, तब इस 20 सूत्री कार्यक्रम पर विस्तार से बात करेंगे । अच्छा नमस्कार !" □

सी–48/2 बी, चौहान बांगर, सीलमपुर,
दिल्ली–110053

नई नीति से कृषि का समग्र विकास

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

भारत एक कृषि प्रधान देश है। फिर भी इस देश में कभी सूखा और कभी बाढ़ तथा कभी दोनों के सम्मिलित प्रकोप के कारण ऐसी स्थिति आ जाती थी कि उस भयावह मनोदशा को प्रकट करने के लिए अकाल यानी आकस्मिक काल के रूप में उसे याद किया जाने लगा और उससे डरा जाता था। अब भी पुराने लोग कुछ वर्षों को इसलिए याद करते हैं कि उस वर्ष देश में अकाल पड़ा था। जिस सर्वशक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य में, जहां सूरज कभी डूबता ही नहीं था, भारतीयों के लिए वह समय तो एक के बाद एक अकालों के लिए प्रसिद्ध था। स्वतंत्रता से ही कुछ वर्षों पूर्व सोना उगलने वाली बंगाल की भूमि पर लाखों व्यक्ति भूख से मर गए। जब भारत स्वाधीन हुआ तो सबसे पहले प्राथमिकता इस बात को दी गई कि ऐसा न हो कि देश में किसी व्यक्ति को या क्षेत्र को अकाल के कारण भूखों मरना पड़े या खाद्यान्न दुर्लभ हो। यह बात नहीं है कि इस बीच देश के किसी भाग में सूखा या बाढ़ से फसलें नष्ट न हुई हों। उसके कारण तत्कालीन कठिनाइयां भी हुई हैं। परन्तु बहुत वर्षों तक भारत को अपनी जनता को जीवित रखने के लिए विदेशों से भारी मात्रा में खाद्यान्न का आयात करना पड़ा। और सभी लोग यह जानते हैं कि उस आर्थिक मजबूरी ने अन्य क्षेत्रों में भी हमारे हाथ-पांव बांध दिए।

इस सब को ध्यान में रखकर देखें तो पिछला वर्ष खाद्य उत्पादन की दृष्टि से एक सफल वर्ष रहा। देश के कई भागों में बाढ़ की विभीषिका बनी रही। कुछ क्षेत्र ऐसे भी रहे जहां सूखा पड़ा, फिर भी देश ने खाद्यान्न उत्पादन में महत्वपूर्ण कीर्तिमान स्थापित किए। इस वर्ष सारी कठिनाइयों के बावजूद 13 करोड़ 30 लाख टन से अधिक खाद्यान्नों का उत्पादन हुआ, जिसमें गेहूं का उत्पादन 3 करोड़ 78 लाख टन हुआ, जबकि खड़ी फसल को वर्षा ने जिस प्रकार नुकसान पहुंचाया था उससे भय था कि कहीं खाद्यान्न उत्पादन कम न हो जाए।

एक समय था जब देश में चीनी का उत्पादन कम हो गया था। उसका कारण संभवतया यह था कि उसके पिछले वर्ष गन्ने का मूल्य इतना कम हो गया था कि दूसरे वर्ष किसानों को उसे उगाने का प्रोत्साहन नहीं रहा। पिछले वर्ष 11 दिसम्बर को मैं उत्तर प्रदेश के बदायूं जिले से मथुरा जा रहा था। रास्ते में सड़क के किनारे से एक किलोमीटर तक गन्ने से लदी बैल गाड़ियों के ठट्ठ के ठट्ठ लगे थे। पता लगा कि शौरों के पास नगरिया में चीनी मिल है, जहां एक दिन पहले गन्ने की पिराई शुरू हुई थी और इसलिए गन्ने की ये गाड़ियां गन्ना उतरवाने के लिए तैयार हैं। इनका गन्ना तोलने में भी कम से कम दो दिन लग जाएंगे। शौरों का क्षेत्र गन्ने के लिए कोई विशेष महत्व नहीं रखता, परन्तु इस बात का प्रतीक है कि उत्तर प्रदेश में गन्ने की उपज काफी हुई है। पिछले वर्ष अकेले उत्तर प्रदेश में 7 करोड़ 16 लाख टन गन्ने का उत्पादन हुआ था, जबकि सारे देश में 48 करोड़ 36 लाख टन गन्ना हुआ। गन्ने का यह उत्पादन इससे एक वर्ष पूर्व पहले के उत्पादन से 19 प्रतिशत अधिक था, जिसके परिणामस्वरूप चीनी और गुड़ के उत्पादन में वृद्धि हुई। इनकी उपलब्धि आसानी से और पहले से कम मूल्यों पर हो सकी।

लौटकर जब मैं उझयानी कस्बे के बाजार से होकर गुजर रहा था तो एक खुले मैदान में बैल गाड़ियां मूंगफली के बोरे के बोरे उतार रही थीं। और पता चला कि इस क्षेत्र के किसानों ने मूंगफली का बहुत अधिक उत्पादन किया है। परन्तु 16 किलोमीटर दूर ही बाजार में मूंगफली का खुदरा भाव वही था जो मैं दिल्ली में छोड़ गया था। यानी दस रुपये प्रति किलोग्राम। मैंने दुकानदार से पूछा कि पड़ोस में इतनी मूंगफली हो रही है और तुम ये दाम लगा रहे हो तो उसने लपक कर उत्तर दिया कि तेल मिल वालों से बचे तब तो हमें मिले। यानी यह साफ है कि इस बार वनस्पति उत्पादक तेल मिलें ये शिकायत नहीं कर सकतीं कि मूंगफली की कमी के कारण उन्हें भाव महंगा करना पड़ा है। वैसे भी सारे देश में तिलहनों के उत्पादन में बहुत वृद्धि हुई है और वह अब 12 करोड़ 6 लाख टन हो गया है। तिलहनों में सबसे अधिक वृद्धि 1975-76 में हुई थी परन्तु पिछले वर्ष की वृद्धि उससे भी साढ़े 13 प्रतिशत अधिक हुई और पिछले वर्ष से 29 प्रतिशत अधिक। एक समय था जब भारत में शक्कर बाहर से आती थी, जावा की चीनी का आयात होता था। परन्तु अब भारत

संसार में सर्वाधिक चीनी उत्पादन करने वाला देश हो गया है। चीनी का उत्पादन 84 लाख टन हुआ जबकि उससे पहले वर्ष 52 लाख टन ही था। लेकिन अकेली चीनी से तो पेट भरता नहीं। देश की अधिकांश जनता के लिए चावल, गेहूं और मोटा अनाज चाहिए। उसकी पूर्ति हो रही है इसका पता केवल अधिक उत्पादन से ही नहीं लगता बल्कि इस बात से भी लगता है कि पिछले वर्ष जो भी उत्पादन हुआ था उसमें से एक करोड़ 52 लाख टन खाद्यान्न सरकारों ने खरीदा। पिछले वर्ष 20 दिसम्बर तक 38.6 लाख टन चावल की सरकार द्वारा खरीद हो चुकी थी। जबकि पिछले वर्ष इसी तारीख तक 47 लाख टन चावल की खरीद हो चुकी थी।

इस खरीफ मौसम के प्रारम्भ में बल्कि यों कहिए कि मौसम से कुछ पहले बड़ी जोर की वर्षा हुई। लेकिन उसके बाद लोग आसमान की ओर ताकते रहे और पानी की बूंदें भी गिरती न दिखाई दीं। पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात और राजस्थान में भयंकर सूखा पड़ा और उसके बाद ही और कहीं साथ-साथ ही उड़ीसा, बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में बड़ी जोर की बाढ़ आई। समुद्री तूफान भी आए। परन्तु जो सूचनाएं मिली हैं उसके बाद भी ये आशा की जाती है कि खरीफ की फसल भी अच्छी होगी। पंजाब में इस समय जितना चावल तैयार हुआ है उतना कभी नहीं हुआ। पिछले वर्ष रबी के मौसम में देश में 5 करोड़ 40 लाख टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ था। इस बार यह लक्ष्य रखा गया है कि रबी की फसल में 6 करोड़ 20 लाख टन अनाज का उत्पादन हो जिससे कि खरीफ में यदि कुछ कमी भी हो तो उसे पूरा किया जा सके। इसके लिए बिजली, डीजल, नहरी पानी, बीज, उर्वरक आदि अधिक मात्रा में उपलब्ध कराए गए हैं। राज्य सरकारों को भी बीजों, उर्वरकों तथा खेती की उपज बढ़ाने में उपयोगी अन्य वस्तुओं के लिए ढ़ाई सौ करोड़ रुपये के अल्पकालिक ऋण दिए गए हैं। कृषि उत्पादन केवल अनाज तक ही सीमित नहीं है। हमारे अनेक उद्योग कृषि पर आधारित हैं और फिर संतुलित भोजन के लिए अनाज के साथ-साथ सब्जी और फल भी चाहिए। कृषि के उत्पादन के फलस्वरूप ही हमारे देश के अधिकांश नागरिकों की वस्त्रों की समस्या हल होती है। पिछले वर्ष कपास का उत्पादन 78.86 लाख गांठें था। इससे देश की कपास की आवश्यकता तो पूरी हुई, विदेशों को भी कपास का निर्यात करना संभव हुआ। पटसन भारत का एक मुख्य निर्यात उद्योग है। इस वर्ष पटसन और मेस्टा का उत्पादन 84 लाख गांठें हुआ और प्रत्येक गांठ 180 किलोग्राम की थी। इस प्रकार उत्पादन का एक नया कीर्तिमान स्थापित हुआ। पटसन और मेस्टा का उत्पादन बढ़ाना इसलिए भी आवश्यक था कि देश में खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुओं के भंडारण के लिए बोरे-बोरियों और बारदाने के रूप में ये चीजें काम आती हैं। इस वर्ष आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात और पंजाब में खाद्यान्न के अब तक के सबसे अधिक उत्पादन के लक्ष्य पूरे हुए।

यह सही है कि भारत के निर्यात उद्योग में अब कच्चे माल की बजाय तैयार माल भेजने को प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि उससे हमारे प्राकृतिक साधनों का पूरा लाभ हमको ही मिलता है। फिर भी कुछ ऐसी चीजें हैं जो भारत की विशेषता हैं और जिनसे भारत को पर्याप्त मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। पिछले वर्ष भारत के कहवे के निर्यात में काफी वृद्धि हुई। अप्रैल से अगस्त, 1982 तक के जो आंकड़े उपलब्ध हैं उनसे पता चलता है कि कहवे के निर्यात में पिछले वर्ष की अपेक्षा 63 प्रतिशत की वृद्धि हुई। तम्बाकू और बीड़ी इत्यादि में 41 प्रतिशत की, चीनी में 46.1 प्रतिशत की, कपास में 40 प्रतिशत की, डिब्बा बंद खाद्य में 17 प्रतिशत की, तेल की खली में 18 प्रतिशत की और समुद्री उत्पाद यानी मछली आदि के निर्यात में 28 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस वर्ष लक्ष्य रखा गया है कि कृषि उत्पादनों के निर्यात से 16 अरब 17 करोड़ रुपये की उपलब्धि की जाए। ये आंकड़े इसलिए महत्वपूर्ण हैं कि एक समय था जब भारत हर चीज का आयात ही करता था, चाहे गेहूं हो, चावल हो, सोयाबीन का तेल हो या वनस्पति बनाने के लिए दूसरा तेल हो, चीनी हो या मोटा अनाज। आवश्यक खाद्यान्नों के मूल्य कहीं सूखा, कहीं बाढ़ और कहीं संचार साधनों में रुकावट के कारण बढ़ न जाएं, इसलिए इस वर्ष भारत सरकार ने 40 लाख टन गेहूं के आयात के लिए भी समझौते किए हैं। संभावना यह है कि यह गल्ला भंडार में ही रखा रहे और इसका केवल असर यह हो कि कहीं अस्वाभाविक कमी पैदा न हो और मूल्य न बढ़ने पाए। वैसे भारत सरकार की नीति किसानों को लाभकारी मूल्य देने की रही है। किसानों को सहायता देने के लिए खरीद का जो न्यूनतम मूल्य था उसमें पिछले दो वर्षों में 23 से लेकर 51 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। धान, चावल, मोटा अनाज, कपास, मूंगफली, सोयाबीन सूरजमुखी का बीज, अरहर, मूंग और उर्द को इस प्रकार जो अधिक मूल्य दिया गया उसके परिणामस्वरूप इन सभी वस्तुओं के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। साथ ही साथ यह व्यवस्था भी रखी गई है कि अगर किसी स्थान पर कोई फसल बिगड़ जाती है तो उस स्थान पर दूसरी फसल उगाई जाए। उत्तर प्रदेश में खरीफ की क्षति को पूरा करने के लिए 5 लाख हैक्टेयर भूमि में तोरिया लगाने का कार्यक्रम शुरू किया गया है और सुधरे किस्म का 84 हजार क्विंटल गेहूं खरीद कर किसानों को बेचा गया है। जिन क्षेत्रों में रासायनिक खाद का प्रयोग नहीं होता था वहां उनको प्रोत्साहन दिया गया। गेहूं के उत्पादन का लक्ष्य एक करोड़ 40 लाख टन निर्धारित किया गया है। उत्तर प्रदेश अब आन्ध्र प्रदेश और बिहार जैसे बड़ी आबादी वाले, हरियाणा और पंजाब जैसे कृषि कार्य में अग्रणी क्षेत्रों से भी उर्वरकों के प्रयोग में आगे बढ़ गया है। पिछड़े समझे जाने वाले राज्यों में कृषि के विकास के लिए उठाया गया प्रत्येक प्रगतिशील कदम स्वागत योग्य है। □

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लागू होने के साथ ही यह स्पष्ट हो गया है कि ग्रामीण गरीब परिवारों को गरीबी रेखा से ऊपर लाने के लिए उन पर विशेष ध्यान दिया जाएगा तथा व्यक्तिगत रूप में उनकी सहायता की जाएगी। इस कार्यक्रम के लागू होने से पहले ही वार्षिक योजनाओं आदि कई कार्यक्रमों द्वारा क्षेत्रवार विकास कार्यक्रम लागू किए जा चुके हैं। ये योजनाएं राज्य व राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर लागू की गई।

गुजरात का अनुभव

गुजरात में गुजरात राज्य ग्रामीण विकास निगम ने, जो कि राज्य का उपक्रम है, ग्रामीण विकास के लिए निम्नतम स्तर पर योजना प्रारम्भ की है। निगम ने प्रारम्भ में विभिन्न जिलों के कुछ ग्राम समूहों में निम्नस्तर पर योजना

स्थानीय सरकारी कर्मचारियों द्वारा लक्ष्य परिवारों में व्यक्तिगत रूप में सम्पर्क बनाना, विशेषकर शिक्षकों के माध्यम से निम्न जानकारी प्राप्त करना: (अ) रोजगार स्थिति सहित कुल कार्यरत सदस्यों की संख्या (आ) आमदनी वाली सम्पत्ति का स्वामित्व (इ) यदि कोई ऋण लिया है तो उसकी वापसी की स्थिति (ई) प्राप्त कार्य कुशलता (उ) कार्य कुशलता बनाने और आय के स्रोत बढ़ाने के लिए जरूरी सहायता।

विद्यमान मूल सुविधाओं के बारे में जानने के लिए ग्राम-स्तरीय नेताओं तथा सरकारी संस्थाओं से सम्पर्क (अ) सड़क, जल आपूर्ति, स्कूल, स्वास्थ्य सेवाएं, विद्युत आदि का ढांचा (आ) आर्थिक क्रियाकलाप, लघु सिंचाई, दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियां, कृषि उत्पादों के विक्रय को उपलब्ध कराया गया जिससे रोजगार में भी सहायता मिले।

(ग) योजना के तीसरे चरण में परिवारों के आर्थिक क्रिया-कलापों को गतिशील बनाने के लिए कृषि उत्पाद विपणन समिति, सामुदायिक सिंचाई आदि की व्यवस्था की गई।

गुजरात राज्य ग्रामीण विकास निगम के अनुभव उस समय सहायक सिद्ध हुए जब राज्य भर में अत्यन्त ग्रामीण गरीब परिवारों के उत्थान के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम लागू किया गया। राज्य सरकार ने निम्न स्तर पर योजना प्रारम्भ करने के लिए गु० रा० ग्रा० वि० नि० के उपायों को ग्रहण करने का निश्चय किया। गु०रा० ग्रा० वि० नि० ने समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए, योजनाएं बनाने हेतु, क्षेत्र स्तर

गुजरात की ग्रामीण विकास योजना

* के० एन० शेलट

प्रारम्भ की। इन योजनाओं के तैयार करने में जो अनुभव मिला उसका उपयोग बाद में 1979 में ओखला मंडल विकास खंड, 1980 योजना तैयार करने में किया गया। गुजरात राज्य ग्रामीण विकास निगम ने बाद में ऐसी ही योजनाएं गांधीनगर, काड़ी, मांडवी, (कच्छ) चोटीला और डंग्स के लिए तैयार कीं। निगम द्वारा निम्नतम स्तर पर प्रारम्भ की गई इस योजना की खास विशेषताएं निम्न प्रकार हैं।

प्रमुख विशेषताएं

भूमि अभिलेखों की सहायता से और स्थानीय नेताओं की सहायता से छोटे और सीमान्त किसानों, कृषि मजदूरों और ग्रामीण शिल्पकारों के परिवारों में से लक्ष्य परिवारों को छांट कर लक्ष्य समूह परिवारों की सूची तैयार करना।

के प्रबन्ध (इ) वानिकी व नदी तट की भूमि के उपयोग के स्रोत (ई) चारे, विपणन व्यवस्था आदि की समस्याएं (उ) स्व-रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या व नए क्षेत्रों में संभावनाएं।

इन दो सर्वेक्षणों के आधार पर गुजरात राज्य ग्रामीण विकास निगम ने सूक्ष्म-स्तर पर परिवारों के पूर्ण विकास के लिए निम्न प्रकार से योजना तैयार की (क) सर्वप्रथम आय के हिसाब से परिवारों को तीन समूहों में विभाजित किया गया: प्रथम समूह में 1500 रुपये तक, द्वितीय में 1500 से 2500 रु० व तृतीय समूह में 2500 से 3500 रु० आय वाले परिवारों को उनकी ऋण वापसी की क्षमता के हिसाब से रखा गया।

(ख) योजना के दूसरे चरण में जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए समर्थक साधनों के अधिकारियों के लिए एक मैनुअल का प्रकाशन किया। 1982 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की योजना इस प्रकार की गई।

विधि इस प्रकार अपनाई गई

प्रत्येक खण्ड को समान आर्थिक व सामाजिक लक्षणों वाले गांवों के कई समूहों में विभाजित किया जाए। क्रियान्वयन का कार्य एक समूह से दूसरे समूह में जाए तथा कुछ ही समय में सारे समूह-पूरे खंड में फैल जाए।

--प्रत्येक समूह में योजना ग्राम स्तर के सर्वेक्षण से प्रारम्भ हो जिसमें प्रत्येक कार्यक्रम के अवसरों को बताया जाए।

--प्रत्येक गांव में संभावित लाभान्वितों का पता लगा कर साक्षात्कार किया जाए ताकि व्यक्तिगत आवश्यकताओं और साधनों

का पता चल सके । प्रत्येक समूह में लगभग 100 परिवारों से सम्पर्क किया जाए ।

—मुख्य प्रधानता व्यक्तिगत आय और रोजगार बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को दी जाए ।

अन्य समर्थक साधनों जैसे दुग्ध उत्पादन और विपणन सुविधाओं पर भी आय बढ़ाने के लिए ध्यान दिया जाना चाहिए।

क्षेत्र स्तर की संस्थाओं के लिए इन कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने हेतु निम्न प्रकार के सुझाव मैनुअल में दिए गए हैं :—

—एक पूर्ण मैनुअल जिसमें निदेशों सहित फार्म/प्रपत्र हो ।

—प्रत्येक फार्म जहां तक संभव हो सके सरल हो तथा सारे फार्म एक दूसरे से जुड़े हों ।

—प्रत्येक वर्ष की योजना जिला ग्रामीण विकास एजेन्सी के विद्यमान बजट और बैंकिंग प्रक्रिया के अनुरूप हो ।

एक विकास खंड के 600 गृहस्थों के लिए योजना बनाने में मैनुअल का इस प्रकार उपयोग हो सकता है :—

फार्म–1 में गांव का सामान्य सर्वेक्षण हो जिसमें सरपंच, पटवारी व पंचायत के अन्य सदस्यों के साथ साक्षात्कार तथा विकास खंड से प्राप्त सूचनाएं एकत्र हों। इसमें भूमि उपयोग, कृषि और पशुधन, सामाजिक ढांचा (सड़कें, पाठशाला, पीने का पानी), प्राकृतिक साधनों आदि का कम या अधिक उपयोग और कृषि विकास का स्तर दर्शाया गया हो। इस फार्म का उद्देश्य गांव के बारे में पूरी सूचना और उसकी तस्वीर लेकर भावी अवसरों के बारे में अनुमान और योजना बनाने में सहायता प्राप्त करना है ।

फार्म–2 में गृहस्थों से साक्षात्कार हैं। समूह के प्रत्येक लाभान्वित परिवार के साथ ग्रामीण अध्यापक, जिसे इसके लिए पारिश्रमिक दिया गया है, द्वारा साक्षात्कार हैं । इसका पुनर्रीक्षण विकास अधिकारी के जिम्मे है । फार्म में प्रत्येक गृहस्थ के पास उपलब्ध भूमि, जल, पशुधन, आदि स्रोतों का पता लगाना है । इसमें परिवार के सदस्यों को प्राप्त कार्य प्रवीणता का पता लगाना शामिल है ताकि गृहस्थ के मुखिया से उसे सहायता देने के बारे में जाना जा सके।

फार्म-3 में परिवार की सम्पत्ति और आवश्यकता तथा प्रार्थना शामिल है । इसे विकास खण्ड स्तर का अधिकारी जांच करके अनुमोदन करता है ।

फार्म–4 में कृषि पशुपालन, कुटीर उद्योग आदि शीर्षों के अन्तर्गत वर्गीकरण है ।

फार्म–5 और 6 में विकास खंड के समूह के लिए वित्तीय आवश्यकता तथा संभावित उत्पादन के संबंध में योजना है ।

फार्म–4, फार्म–1 से ही लिया गया है तथा स्थानीय नेताओं के साथ विचार-विमर्श द्वारा तैयार किया जाता है । इसमें नवीन विकास कार्यक्रमों के लिए स्थानीय स्रोतों और समस्याओं का क्रमवार नवीकरण है ।

फार्म–5 में विकास खंड के लिये पूरे कार्यक्रम का सारांश है जिसमें वित्तीय साधन भी समाहित हैं । इसमें कार्यक्रम के चरण व धन के साधनों का पता लगाना शामिल है । यह योजना का दस्तावेज है जिस पर ब्लाक व जिला स्तर पर बैंकों से विचार विमर्श किया जाता है ।

योजना प्रक्रिया का रूप

योजना प्रक्रिया में कई कार्य-कलाप शामिल हैं जिसमें समूह का चुनाव, क्षेत्र अधिकारियों का चयन, गांवों का सर्वेक्षण, परिवारों का सर्वेक्षण जांच कार्य और अन्तिम योजना को अन्तिम रूप देना शामिल है ।

1. प्रत्येक खंड में तालुका विकास-अधिकारी को योजना प्रक्रिया के लिए उत्तरदायी बनाया गया । राज्य सरकार की ओर से जिला विकास अधिकारी को एक जिला स्तर अधिकारी नियुक्त करने को कहा गया जिसका कार्य एक खंड की परिवीक्षा करना और खंड स्तर की योजना सहायता करना तथा खंड और जिला स्तर के कर्मचारियों में समन्वय बनाना था ।
2. सरकार की ओर से परिवार, गांव आदि का सर्वेक्षण करने और योजना बनाने में सहायता देने के लिए पारिश्रमिक देने की भी व्यवस्था की गई । प्रत्येक समूह की योजना के लिए समय निर्धारित किया गया । सम्पूर्ण समूहों की योजना मार्च, 1981 और मई, 1981 के बीच तैयार होनी थी । प्रत्येक खंड में लगभग 2,000 परिवारों के लिए कार्यक्रम तैयार करना था ।
3. पूरा कार्य मार्च, 1981 में प्रारम्भ किया गया और मई, 1981 के अन्त तक पूरा कर लिया गया। जुलाई, 1981 में राज्य स्तरीय समन्वय समिति की बैठक में परिवारों और गांवों के लिए व्यक्तिगत सम्पर्क पर आधारित समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को अनुमोदित किया गया ।
4. राज्य सरकार की ओर से ऐसे अधिकारी भी नियुक्त किए गए जो जिला स्तर पर कार्यक्रम के सुचारू रूप से क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी थे ।

उपर्युक्त तरीके में 185 समूह/खंड लिए गए । 3.77 लाख परिवारों का सर्वेक्षण किया गया और 1981–82 वर्ष के लिए 1.50 लाख परिवारों के लिए विस्तृत योजना तैयार की गई ।

इस प्रकार योजना प्रक्रिया में सरकार और लाभ प्राप्त करने वाले परिवारों का सीधा समावेश था । इसके द्वारा स्थानीय सरकारी संस्थाओं को अपने स्तर पर विकास के लिए योजना बनाने के सुझाव देने का सुअवसर प्राप्त हुआ। हालांकि जो योजना तैयार हुई वह कोई अत्यन्त पूर्ण दस्तावेज नहीं था फिर भी इससे कुछ सरल और परिणामदायक तथ्य अवश्य मिले । □

अनुवाद :—
हनुमान सिंह पंवार,
51, मंदिर वाली गली,
यूसुफ सराय, नई दिल्ली–16

केन्द्र के समाचार

खाद्यान्नों का उत्पादन

इस वर्ष देरी से आए और कमजोर मानसून के कारण खरीफ उत्पादन के गत वर्ष की तुलना में कुछ कम होने की संभावना है। सरकार ने खाद्य उत्पादन को बढ़ाने और सूखे की स्थिति से पैदा होने वाली आकस्मिकताओं से निपटने के लिए अनेक उपाय किए है। इन उपायों में अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित बातें शामिल हैं :

(1) सिचाई जल को नियोजित निर्मुक्ति और अच्छे प्रबन्ध और फसल की उचित योजना तथा उर्वरकों की प्रति हैक्टेयर खपत को बढ़ाकर सिंचित क्षेत्रों में उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाना ;

(2) सूखे की स्थिति में कम संवेदनशील फसलों को उगाकर वैकल्पिक सस्य नीतियां अपनाना;

(3) सिचाई पम्पसेटों के लिए डीजल और बिजली उपलब्ध कराना और नलकूपों आदि की मरम्मत करना;

(4) पौध उपलब्ध कराने के लिए सिंचित क्षेत्रों में सामुदायिक नर्सरियों का वृहत् कार्यक्रम;

(5) बीजों, उर्वरकों और कीटनाशियों सहित अन्य सुविधाओं की आपूर्ति करना और वैकल्पिक फसलों के बीज की उपलब्धि सुनिश्चित करना;

(6) रबी खाद्यान्नों के उत्पादन को बनाने के लिए अभियान चलाना; और

(7) ऋण उपलब्ध कराना।

चावल उत्पादन के लिए अधिक धन की व्यवस्था

भारत सरकार ने चालू वर्ष के दौरान चावल के सामुदायिक नर्सरी कार्यक्रम के लिए 205 लाख रुपये की अतिरिक्त धनराशि स्वीकृत की है। वर्ष 1982–83 की योजना के लिए 170 लाख रुपये का परिव्यय स्वीकृत किया गया था। चावल उत्पादक राज्यों में इस कार्यक्रम के प्रभाव को देखते हुए 17 हजार हैक्टेयर के लक्ष्य को बढ़ाकर 25 हजार हैक्टेयर और 170 लाख रुपये के वित्तीय आवंटन को बढ़ाकर 375 लाख रुपये का करने का निर्णय किया गया है। केन्द्रीय क्षेत्र योजना के अन्तर्गत सरकारी फार्मों या कृषकों के नलकूपों के निकट चावल की सामुदायिक नर्सरियों के द्वारा धान की पौध उगाने के लिये प्रति हैक्टेयर 1500 रुपये की सहायता दी जाती है। खरीफ मौसम के दौरान सामुदायिक नर्सरियों के लिए 18,177 हैक्टेयर क्षेत्र इस्तेमाल किया गया। शेष क्षेत्र का प्रयोग रबी मौसम के दौरान किया जायेगा।

दालों के सुधार संबंधी समेकित परियोजना

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् सहित देश के विभिन्न राज्यों में 28 केन्द्रों पर सन् 1967 में दालों के सुधार के लिए अखिल भारतीय समन्वित प्रायोजना शुरू की गई थी। इसके अन्तर्गत मूंग की कम अवधि में तैयार होने वाली कई किस्में विकसित की गई, जिन्हें बहु-फसली पद्धतियों के अन्तर्गत गन्ना, आलू, सरसों और गेहूं जैसी फसलों के साथ उगाया जा सकता है। इन किस्मों को देश के दक्षिणी और पूर्वी भागों में धान के बाद खाली भूमि में उगाया जा सकता है। गर्मी के मौसम के दौरान देश के उत्तरी भागों के अन्तर्गत परीक्षणों में मूंग की आठ किस्मों की औसत उपज की जांच की गई। इन किस्मों से 63–65 दिनों में, 7.36 क्विंटल से 9.97 क्विंटल के बीच प्रति हैक्टेयर उपज प्राप्त हुई। गर्मी के मौसम में किसानों के खेतों में हरियाणा और उत्तर प्रदेश में, इन किस्मों में से एक किस्म पी० एस०–16 की उपज 9 से 11.4 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक हुई।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों और इसी तरह देश के अन्य भागों में स्थित संस्थानों के कृषि वैज्ञानिकों ने भी, कम अवधि में पकने वाली अरहर की नई किस्में विकसित की हैं। इन किस्मों की कटाई करीब पांच महीने में की जा सकती है। अरहर की इन किस्मों से उत्तर पश्चिमी-मैदानी भागों में गेहूं-अरहर फसल चक्र उगाना संभव हो गया है, जो पहले संभव नहीं था। अरहर की इन किस्मों में से कुछ किस्मों की किसानों के खेतों में बड़े पैमाने पर प्रदर्शनों में जांच की गई। इन प्रदर्शनों से अरहर की औसत उपज 21 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक थी। देश में अरहर की औसत उपज 8 क्विंटल प्रति हैक्टेयर से भी कम है।

गांवों में पेयजल के लिए और अधिक सहायता

निर्माण और आवास मंत्रालय ने राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को केन्द्र द्वारा प्रायोजित त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम के तहत योजनाओं के कियान्वयन हेतु अनुदान सहायता के रूप में और अधिक राशि जारी की है।

उड़ीसा राज्य को 175.48 लाख रु० की अनुदान सहायता दी गई है। यह राज्य को वर्ष 1982–83 के लिए दी जाने वाली सहायता की तीसरी किश्त है। इससे पूर्व राज्य को पहली दो किश्तों में 59.02 लाख रु० की राशि जारी की गई थी।

त्रिपुरा राज्य को दूसरी किश्त के रूप में 61.50 लाख रु० की अनुदान सहायता दी गई है। त्रिपुरा को चालू वित्त वर्ष

के लिए प्रथम किश्त के रूप में 20 लाख रु० दिए गए थे।

इसी कार्यक्रम के तहत निगरानी और जांच इकाइयों पर व्यय हेतु जम्मू और कश्मीर राज्य को 2.50 लाख रु०, मेघालय को 2.15 लाख रु० और मिजोरम को 1.50 लाख रु० दिए गए हैं।

आम की बौनी उन्नत किस्म आम्रपाली

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने आम की एक नई किस्म "आम्रपाली" का विकास किया है जिससे देश में आम की बागवानी में क्रांति आने की संभावनाएं निहित हैं। दक्षिण भारत की लोकप्रिय किस्म "नीलम" तथा उत्तर भारत की प्रसिद्ध किस्म "दशहरी" के युग्म से विकसित इस नई किस्म में अपनी कई विशेषताएं हैं, जैसे इसका गूदा बहुत स्वादिष्ट व रेशा-विहीन होता है। यह अधिक उपज देने वाली किस्म है और अन्य किस्मों की तुलना में लगभग दुगुनी उपज देती है। पौधा लगाने के बाद इसमें सातवें वर्ष फल लगने लगते हैं। जबकि परम्परागत भारतीय किस्मों में फल 12–15 वर्ष बाद लगते हैं।

आम्रपाली फल का गूदा फल के आकार का 75 प्रतिशत होता है। इसकी गुठली बहुत छोटी होती है। इसके गूदे में अम्लीयता कम और विलयशील लवण की मात्रा अधिक होती है। इसकी पत्तियां कागज की भांति पतली होती हैं, अतः इसके बाग में पेड़ों के बीच-बीच खेती करना संभव होता है क्योंकि पत्तियां महीन होने के कारण सूर्य की रोशनी जमीन तक पहुंच सकती हैं।

कच्छ में खजूर की खेती

कच्छ में खजूर की पैदावार होने लगी है। यह फल अरब से आया है और यहां इतना लोकप्रिय हो गया है है कि स्थानीय लोग इसे कल्प वृक्ष कहते हैं। अकेले कर्व गांव में ही लगभग 2 लाख खजूर के पेड़ हैं। अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में खजूर की पैदावार अच्छी होती है। एक बार पेड़ लगाने के बाद इसकी खेती-बाड़ी पर अधिक खर्चे की आवश्यकता नहीं होती है। सामान्यतः खजूर को मानसून में बोया जाता है। इसके बोने के दो तरीके हैं: (1) गुठली बोना (2) खजूर की पौध लगाना। पौधों को सरकारी पौधशाला में तैयार किया जाता है और इन पौधों को किसानों में मुफ्त बांट दिया जाता है। एक पौध चार या पांच वर्ष में पूरा बढ़कर बड़ा होता है। बाद में इसमें प्रत्येक वर्ष फूल निकलते हैं। लेकिन फूल अपने आप फल नहीं बन जाते हैं। पैदावार बढ़ाने के लिए विशेष उपाय करने होते हैं।

इस वृक्ष की एक समस्या है। वह यह है कि जब तक ये बढ़कर बड़े नहीं हो जाते हैं तब तक यह पता नहीं लग पाता है कि वृक्ष नर है या मादा। नर या मादा वृक्ष का पता लगने के बाद पराग युक्त फूलों को तोड़ लेना होता है और उन्हें पानी में डुबोकर मादा वृक्ष के फूलों पर इसके पानी का छिड़काव करना पड़ता है। एक बार विकसित होने पर इस वृक्ष की सिंचाई करने या खाद डालने की आवश्यकता नहीं होती है।

खाद्य उत्पादन में वृद्धि करने हेतु कदम

सरकार ने खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने तथा उसे स्थिर रखने के लिए निरन्तर कोशिश की है। इस दिशा में किए गए विभिन्न उपाय नीचे दिए गए हैं:—

(1) असिंचित क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाओं का विस्तार करना और उपलब्ध जल संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग करना।

(2) फसलों को अधिक उपज देने वाली और कम अर्से में तैयार होने वाली किस्मों का विकास करना।

(3) उन्नत तकनोलोजी अपनाना, जिसमें बारानी भूमि में तथा वर्षा सिंचित परिस्थितियों में फसलों की खेती करने के लिए जल उपयोग तथा नमी संरक्षण भी शामिल है।

(4) किसानों को खेती के लिए विभिन्न आदान ठीक समय पर उपलब्ध कराना।

(5) उर्वरकों का अधिक तथा संतुलित उपयोग करना।

(6) सिंचाई के प्रयोजनों के लिए डीजल तथा बिजली की सप्लाई का नियमित प्रबन्ध करना।

(7) फार्म स्तर पर प्रोद्योगिकी का स्थानान्तरण करने के लिए विस्तार के गहन प्रयास करना।

(8) किसानों को ऋण की सुविधाएं प्रदान करना; और

(9) सूखे तथा बाढ़ों के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने के लिए आकस्मिक उत्पादन योजना का क्रियान्वयन करना।

प्रमाणित बीजों के वितरण में वृद्धि

भारत सरकार ने छठी योजना के दौरान बीजों के विकास के लिए 80.56 करोड़ रु० की व्यवस्था की है। पांचवीं योजना में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 14.60 करोड़ रु० की व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार बीज विकास में तीन गुनी वृद्धि हुई। राष्ट्रीय बीज परियोजना भारत सरकार का बीजों के उत्पादन, प्रक्रिया और वितरण का एक महत्वपूर्ण प्रयास है। यह परियोजना आंध्र प्रदेश, बिहार, हरियाणा, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश जैसे प्रमुख राज्यों के सहयोग से आरंभ की गई है। बीजों की नई किस्में तैयार करने से लेकर प्रमाणित बीजों के वितरण का काम अत्यधिक जटिल है। फिर भी वर्ष 1980-81 के दौरान राज्यों द्वारा गेहूं, धान, मकई, ज्वार, बाजरा, तिलहनों, दालों और आलू के लगभग 25 लाख क्विंटल प्रमाणित बीजों का वितरण किया जा चुका है जबकि वर्ष 1979-80 में 14 लाख क्विंटल बीज वितरित किए गए। इस प्रकार प्रमाणित बीजों के वितरण में 80 प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई।

वर्ष 1982 में अनाज का रिकार्ड उत्पादन

वर्ष 1981–82 के दौरान पिछले वर्ष की अपेक्षा कृषि उत्पादन में वृद्धि की दर 5.07 प्रतिशत रही। जबकि छठी योजना में वार्षिक वृद्धि की दर केवल 4 प्रतिशत होने की बात कही गई है। अनाज का कुल उत्पादन 1330.6 लाख टन हुआ जो कि अब तक उत्पादन में सबसे अधिक है। इस वर्ष गेहूं का भी रिकार्ड उत्पादन, 378 लाख टन हुआ। यदि इस वर्ष अप्रैल-मई में बे-मौसम वर्षा न होती तो यह उत्पादन और भी अधिक होता। वर्ष 1981–82 में गन्ने का उत्पादन 1836 लाख टन हुआ जोकि पिछले वर्ष की अपेक्षा 19 प्रतिशत अधिक था। तिलहन का उत्पादन भी 120.6 लाख टन हुआ जो पिछले वर्ष की अपेक्षा 29 प्रतिशत अधिक था। इसी तरह पटसन, कपास आदि में भी लगभग रिकार्ड उत्पादन हुआ। आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात और पंजाब में अनाज का रिकार्ड उत्पादन आंका गया।

चुनिन्दा ग्रामोद्योग परियोजना

खादी तथा ग्रामोद्योग आयोग ऐसे चुनिन्दा ग्रामोद्योग की परियोजनाएं तैयार कर रहा है जिसके लिए बैंकों से ऋण मिल सकता है। आयोग ने 15 लाख रुपये से अधिक का उत्पादन करने वाले सहायता प्राप्त संस्थानों को संस्थागत वित्त प्राप्त करने के लिए बढ़ावा देने के बारे में विशेष कदम उठाए हैं।

समन्वित ग्रामीण विकास और स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत आयोग को खादी तथा ग्रामोद्योग क्षेत्र में प्रति वर्ष प्रत्येक खंड के 50 दस्तकारों को सहायता देने की जिम्मेदारी सौंपी गई है ताकि ये दस्तकार स्वरोजगार परियोजनाएं स्थापित कर सकें तथा उनका संचालन कर सकें।

थोलेरिया टीके का विकास

केन्द्रीय कृषि मंत्रालय ने पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के लुधियाना स्थित पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय को थोलेरिया टीके का विकास करने को कहा है। थोलेरिओसिस नामक बीमारी विशेषकर अधिक दूध देने वाले संकर नस्ल के पशुओं को होती है। अभी तक इस रोग के लिए कोई दवा उपलब्ध नहीं है। वर्तमान परियोजना के अन्तर्गत पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के पास उपलब्ध तकनीकी जानकारी के आधार पर थोलेरिया टीके के विकास का लक्ष्य रखा गया है। इस परियोजना के लिए भारत सरकार और पंजाब सरकार द्वारा बराबर-बराबर हिस्से का आर्थिक अनुदान दिया जाएगा। इस टीके की उपलब्धि से दूध का व्यवसाय करने वाले किसानों को काफी राहत मिलेगी तथा देश में दूध उत्पादन कार्यक्रम को बल मिलेगा। □

साम गांव की रातों में सूर्य का उजाला

सौर ऊर्जा की अपार किरणों से साम गांव की रातें जगमगा उठी हैं।

साम राजस्थान में जैसलमेर से कोई 45 किलोमीटर दूर थार रेगिस्तान का एक छोटा सा गांव है। इस गांव के लोग ग्वाले हैं और वे जीविका के लिए गायों तथा भेड़ों पर आश्रित हैं। ये लोग सूर्य की भीषण गर्मी से अपना ध्यान हटाने के लिए "मोरचांग" और "रवानाथा" लोकगीतों की धुनें गुनगुनाते रहते हैं। रात को ये सब थके-मांदे पसीने तथा धूल से लथपथ अपने-अपने घर पहुंचते हैं। जहां मिट्टी के दीये अन्धेरे में टिमटिमाते नजर आते हैं। वहां पर लगभग सभी वयस्क निरक्षर हैं। जनसंख्या की सघनता यहां सारे देश में सबसे कम है।

परन्तु 6 दिसम्बर, 1982 की शाम को थके-मांदे गड़रिये जब घर लौटे तो अपने गांव में दिन जैसी रोशनी देखकर चकित हो गए। पंचायत-घर में लगी आठ ट्यूब-लाईटों ने गांव के हर कोने में प्रकाश फैला दिया था।

राजस्थान सरकार के विकास कार्यों में लगे विभिन्न विभागों के लिए विशाल रेगिस्तानी जिले एक बड़ी चुनौती हैं। थोड़ी सी जनसंख्या वाले लम्बे क्षेत्र में बिजली की लाइनें लगाना और रेतीले अंधड़ों पर काबू पाना खर्चीला और जटिल है। इस समस्या के समाधान के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने साम गांव में एक सौर ऊर्जा केन्द्र स्थापित करने का निर्णय किया।

केन्द्रीय इलैक्ट्रानिक्स लि० की सहायता से साम में एक सौर ऊर्जा पैनल बनाया गया है। इस पैनल में 20 प्लेटें लगी हैं। परिवर्तित सौर ऊर्जा बैटरियों में भर दी जाती है। इन बैटरियों से ही पंचायत भवन और सांध्य स्कूल, जिसमें गांव के 40 प्रौढ़ पढ़ते हैं, में रोशनी होती है।

साम एक पर्यटक स्थल है। अन्य देशों के लोग यहां पर रेगिस्तान में ऊंटों की सवारी करने के लिए आते हैं। वे भी सौर ऊर्जा कार्यक्रम से प्रभावित हुए हैं।

सूर्य की जो किरणें साम गांव को भीषण गर्मी में झुलसाती थीं उन्हीं किरणों ने ऊर्जा स्रोत बनकर वहां के निवासियों के जीवन से अन्धेरे को खदेड़ दिया है। □

मध्य प्रदेश के ग्रामीण इलाकों में पेयजल की व्यवस्था

एम० के० भारत

पानी जीवन की बुनियादी जरूरत है। न केवल मनुष्य वरन् समस्त प्राणीमात्र एवं वनस्पति जगत बिना जल के जीवित नहीं रह सकता। जल जीवन के अस्तित्व एवं विकास दोनों के लिए आवश्यक है। मनुष्यों के लिए तो पेयजल की व्यवस्था करना प्राचीन भारतीय संस्कृति में एक महान पुण्य का काम समझा जाता है।

एक कल्याणकारी राष्ट्र होने के कारण यह हमारा प्राथमिक दायित्व है कि हम प्रत्येक व्यक्ति के लिए पीने के स्वच्छ एवं स्वास्थ्य-वर्धक पेयजल की व्यवस्था करें। इसी दृष्टि से हमने अपनी छठी पंचवर्षीय योजना में हर आदमी को पेयजल सुलभ होने का लक्ष्य निर्धारित किया है। नए बीस सूत्री कार्यक्रम में भी सूत्र नम्बर 8 में इसको सम्मिलित किया हुआ है।

मध्य प्रदेश में दूरदराज के इलाकों में पेयजल सुलभ कराने के सघन प्रयास किए जा रहे हैं। मध्य प्रदेश में कुल 70,883 गांव हैं, जिनमें से 47,000 गांव पेयजल की दृष्टि से समस्यामूलक घोषित हैं। अभी तक इन समस्यामूलक गांवों में से 36,049 गांवों में पेयजल की व्यवस्था की जा चुकी है। चालू वित्त वर्ष में राज्य शासन ने साढ़े पांच हजार गावों में नलकूपों के माध्यम से यह सुविधा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा है। एक नलकूप की लागत 15,000 रुपये आती है। बाकी 12,605 समस्यामूलक गांवों में चालू पंचवर्षीय योजना के अन्त तक पेयजल सुविधा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है।

प्रदेश में वर्ष 1980-81 में 3,131 तथा वर्ष 1981-82 में 2,410 आदिवासी-बहुल गांवों में पेयजल सुविधा उपलब्ध कराई गई। पिछले 2 वर्षों में कुल 777 पिछड़े हुए गांवों में पीने का पानी उपलब्ध कराया गया। प्रदेश के गांवों में बड़े पैमाने पर नल-जल योजनाएं क्रियान्वित करने के लिए पश्चिम जर्मनी की संस्था के० एफ० डब्ल्यू० से एक अनुबन्ध हुआ है। जिसके प्रथम चरण में 483 गांवों में लगभग 19 करोड़ रुपये की लागत से पेयजल की व्यवस्था की जाएगी।

जिन गांवों में शासन द्वारा पेयजल सुविधा उपलब्ध कराई जा चुकी है वहां हैंडपम्पों की साज-संभाल की आवश्यकता को देखते हुए शासन द्वारा मैकेनिकों के नए पद कायम किए गए हैं। इस व्यवस्था में गांवों में लगे हैंडपम्प सुचारू रूप से चलते रहेंगे। प्रयत्न यह भी है कि पुरानी किस्म के हैंडपम्पों को आने वाले समय में बेहतर और टिकाऊ पम्पों में बदल दिया जाए। दूर-दराज गांवों में लगे हैंडपम्प ठीक से चलते रहें, गांवों में इसके लिए उनके निवासी युवकों को प्रशिक्षित करने का काम भी राज्य शासन हाथ में लेगा।

अधिक से अधिक गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था हो सके, इसके लिए राज्य शासन कृतसंकल्प है और विभिन्न स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं। □

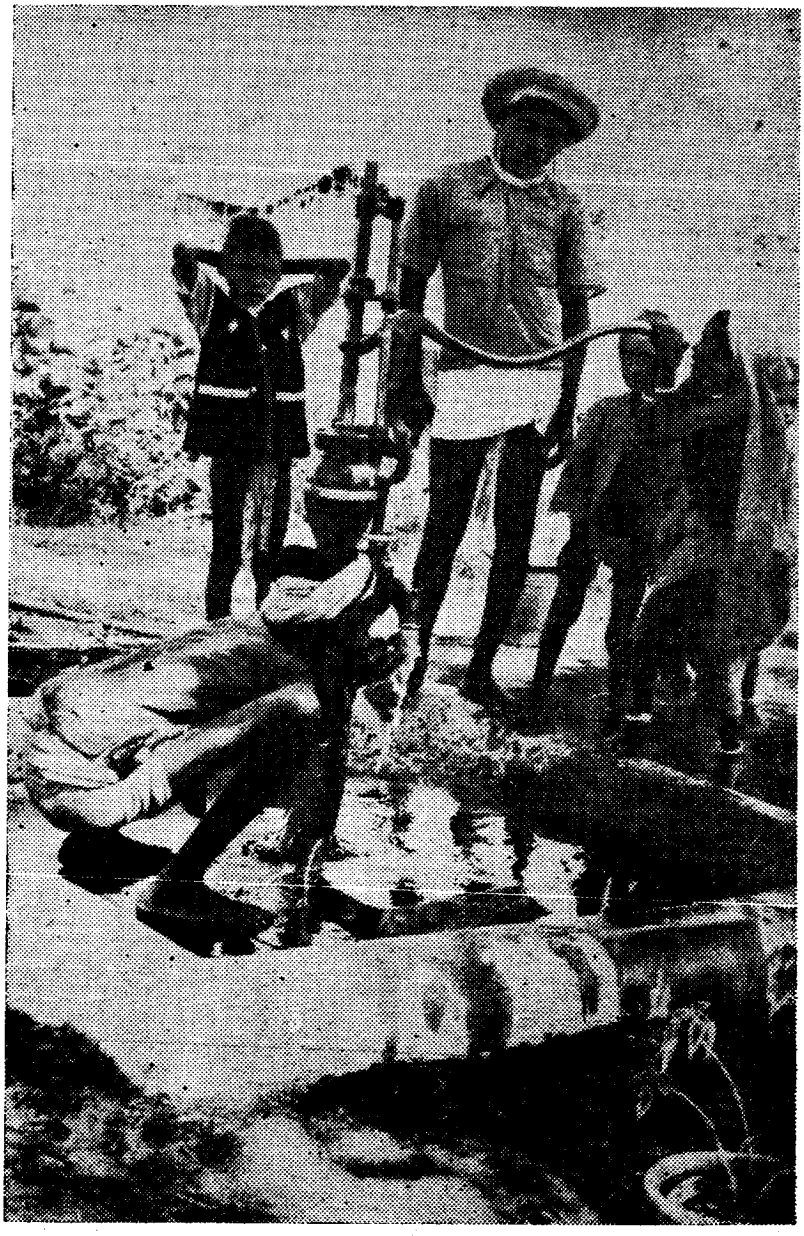

RN 708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at Civil Lines Post Office, Delhi

पढ़ाई में व्यस्त आदिवासी युवतियां

हमारा लक्ष्य—प्रत्येक गांव में स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा
प्रकाशित तथा प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद द्वारा मुद्रित ।